मण्डपकुण्डसिद्धिः

(कुण्डमण्डपसिद्धिः)

संस्कृत-हिन्दीव्याख्योपेता



महर्षि अभय कात्यायन

।। श्रीः ।।

चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
३९५



क्र1/3284

श्रीमद्विट्ठलदीक्षितप्रणीता

मण्डपकुण्डसिद्धिः

(कुण्डमण्डपसिद्धिः)

पाठकोपाह्वबलदेवप्रणीत**बलदा**भाष्यसहित-

मण्डपप्रभाहिन्दीव्याख्योपेता

हिन्दीव्याख्याकारः

महर्षि अभय कात्यायन

सभी प्रकार की धार्मिक पुस्तकें
" झोलिया पुस्तक भण्डार "
निकट भारत माता मंदिर
हरिद्वार-249410
फोन न० - 01334-260614



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक

© चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी-२२१००१

दूरभाष : २३३५२६३; २३३३४३१

सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण २००५ ई०

मूल्य : ६०.००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू० ए०, जवाहरनगर, बंगलो रोड

पो० बा० नं० २११३

दिल्ली-११०००७

दूरभाष : २३८५६३९१



चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बैंक ऑफ बडौदा भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी-२२१००१

दूरभाष : २४२०४०४

अक्षर-संयोजक : अभिलाषा कम्प्यूटर्स, वाराणसी



क913२8

प्रस्तावना

इस विश्व में ईश्वर के द्वारा निरन्तर यज्ञ चलता रहता है। वह इसमें मनुष्यों को भी निमित्त बनाता है। यज्ञ को क्रतु, अध्वर, होम, हवन, सवन आदि कहते हैं। प्राचीन काल में जब इस पृथ्वी पर चक्रवर्ती नरेशों का शासन था तब इस समस्त विश्व में यज्ञ-कार्य चलते रहते थे। भारतीय ऋषि-मुनि भारत से बाहर दूर-दूर तक जाकर धर्मोपदेश देते थे तथा धार्मिक क्रियायें सम्पन्न कराते थे। कण्वगोत्रीय एक ऋषि ने महाभारत-युद्ध के कुछ काल पश्चात् ही अजपति देश (Egypṭ) में जाकर धर्म-प्रचार किया था। उन्हें ही मिश्रर्षि भी कहा जाता है। भविष्यपुराण के अनुसार—

> वासं कृत्वा ददौ ज्ञानं मिश्रदेशे मुनिर्गतः।
> सर्वान्म्लेच्छान् मोहयित्वा कृत्वा तानथ द्विजन्मनः।।

ये मिश्रर्षि शुक्ल यजुर्वेद तथा कृष्ण यजुर्वेद—दोनों के मिश्रण से यागादि सम्पन्न कराते थे। उस समय ईजिप्ट (अजपति) में सूर्य की पूजा होती थी। मिश्र के प्राचीन शेख इन्हीं मिश्रर्षि के शिष्य थे। उस देश का नाम पश्चाद्वर्ती समय में 'मिश्र ऋषि' के नाम पर ही 'मिश्र' हो गया। ईसाइयत के प्रचार-प्रसार के पहले ग्रीक तथा रोम की जनता के साथ ही यूरोप के अनेक भूभागों में निवास करने वाली प्रजा भी हवन करती थी। वहाँ उस समय धातु से निर्मित हवनकुण्डों का प्रचलन था; जिन्हें बाद में केवल 'हवन' कहा जाने लगा। वर्तमान समय में अंग्रेजी में प्रचलित ओवन (Oven) शब्द, जो कि एक प्रकार के अग्नि उपकरण के लिये प्रयुक्त होता है, प्राचीन हवन शब्द का ही अपभ्रंश है। 'आक्सफोर्ड आंग्ल शब्दकोश' इसका उद्गम 'जार्मनिक' भाषा से तथा चेम्बर का आंग्ल शब्दकोश प्राचीन ऐंग्लो सेक्शन भाषा से मानते हैं; परन्तु वास्तव में यह संस्कृत के मूल शब्द 'हवन' का ही अपभ्रंश है; क्योंकि महाभारत-काल तक संस्कृत ही विश्वभाषा थी।

ईश्वरीय कार्य—यज्ञकार्य ईश्वरीय कार्य है; जिसमें ईश्वर ही यज्ञकर्त्ता है और वही हुतभुक् भी है। क्रतु का अर्थ 'ईश्वर' ही है—

> करोति नित्यं सवनं जनानां करोति नित्यं मरणं जनानाम्।
> नित्यक्रियं विश्वमिदं समस्तं सर्गान्तमन्वेष्यति विष्णुगर्भम्।।
>
> हविर्हि विष्णुः स जुहोति नित्यं क्रियाविधौ विश्वमिदं प्रगच्छन्।
> स एव होता स हि वास्तुहुत्यो बिभर्ति रूपाणि यतः स एकः।।
>
> लोकेऽस्ति विष्णुर्हुतभुक् प्रसिद्धः सूर्योऽग्निरापः पृथिवी मरुच्च।
> स्तोत्रा प्रदत्तानि हवींषि सद्यो भोक्तृस्वरूपे परियन्ति तानि।।

विष्णुर्हि लोके हुतभुक्प्रसिद्धः सोऽग्निः स वा यज्ञसमिद्धतेजाः।
वैश्वानरो वास्ति स वास्ति सूर्यो दावानलो वा स हि वाडवो वा।।

यज्ञाङ्ग तथा उपाङ्ग—यज्ञ को सम्पन्न कराने के लिये उसके अङ्गों (मण्डप तथा कुण्डादि) की सम्यक् जानकारी आवश्यक है। वैदिक सूत्रग्रन्थों, ब्राह्मणग्रन्थों, पुराणों तथा तान्त्रिक ग्रन्थों में इन अङ्गों की विस्तृत विवेचना की गयी है। इस विषय पर स्वतन्त्र साहित्य भी प्रचुर प्रमाण में लिखा गया है, जिसका लोप विदेशी एवं विधर्मी आक्रान्ताओं के आक्रमण से तथा कालक्रम से भी बहुत-कुछ हो चुका है; परन्तु इतने पर भी जो कुछ उपलब्ध है, वह चमत्कृत करने वाला है; क्योंकि उसमें मण्डप तथा कुण्ड के उपाङ्गों (खात, नाभि, कण्ठ, मेखला तथा योनि एवं तोरण आदि) का सुस्पष्ट वर्णन मिलता है। दस हाथ या कुछ न्यून से लेकर एक सौ बीस या इससे भी अधिक लम्बे-चौड़े मण्डपों की निर्माण-विधि इन ग्रन्थों में मिलती है। उनमें भूमि के विभाग, स्तम्भों की सङ्ख्या तथा वलिका-काष्ठों की सङ्ख्या का भी उल्लेख है। पुराण में सत्ताईस प्रकार के मण्डपों की जानकारी मिलती है। ये मण्डप आकृतिभेद तथा आयामभेद से विपुल होते हैं।

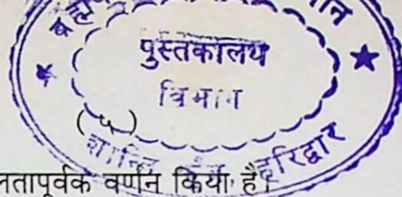
कुण्डों के भेद—कुण्डों के मुख्य दो भेद हैं—आयामभेद तथा आकृतिभेद। आयामभेद से कुण्ड एकहस्तात्मक, द्विहस्तात्मक, चतुर्हस्तात्मक, षड्हस्तात्मक, अष्टहस्तात्मक तथा दशहस्तात्मक—इस तरह पाँच प्रकार के होते हैं। दूसरे प्रकार के भेद में मण्डप की आकृतियों के अनुसार भेद होते हैं। आकृति के अनुसार कुण्ड तीन प्रकार के होते हैं—

१. कोणात्मक कुण्ड—इनमें त्रिकोण कुण्ड, चतुरस्र कुण्ड, पञ्चास्र कुण्ड, षडस्र कुण्ड, सप्तास्र कुण्ड, अष्टास्र कुण्ड, नवास्र कुण्ड, रुद्र कुण्ड (एकादशास्र कुण्ड), षट्त्रिंशास्र कुण्ड एवं अष्टचत्वारिंशास्र कुण्ड होते हैं।

२. वर्तुल कुण्ड—इनमें वृत्त कुण्ड, अर्धचन्द्र कुण्ड तथा पद्म कुण्ड होते हैं। सूर्य कुण्ड भी वर्तुलाकार होता है।

३. विशिष्ट कुण्ड—इनमें योनि कुण्ड, असि कुण्ड, कुन्त कुण्ड, चाप कुण्ड, मुद्गर कुण्ड, शनि कुण्ड, राहु कुण्ड, केतु कुण्ड, चन्द्र कुण्ड, गुरु कुण्ड, भौम कुण्ड, बुध कुण्ड, शुक्र कुण्ड आदि होते हैं; जिनका वर्णन तान्त्रिक ग्रन्थों में मिलता है।

मण्डपकुण्डसिद्धि—इस ग्रन्थ का नाम मण्डपकुण्डसिद्धि है; परन्तु कुछ लोग इसे 'कुण्डमण्डपसिद्धि' भी कहते हैं। ग्रन्थकार ने इसका नाम 'मण्डपकुण्डसिद्धि' ही रक्खा है। इस ग्रन्थ में सारे कुण्डों को चतुरस्रमूलक मानकर चतुरस्र, योनि कुण्ड, अर्धचन्द्र कुण्ड, त्रिकोण कुण्ड, वृत्त कुण्ड, षडस्र कुण्ड, पद्म कुण्ड तथा अष्टास्र कुण्ड—इन आठ आकारों वाले एक हाथ क्षेत्रफल से लेकर दस हाथ क्षेत्रफल तक के



कुण्डों की रचना-विधि का सरलतापूर्वक वर्णन किया है।

इस ग्रन्थ के प्रथम अध्याय में तीस श्लोक हैं, जिनमें मण्डप-निर्माण की विधि माप के सहित बताई गयी है। द्वितीय अध्याय में अट्ठारह श्लोक हैं, जिनमें माप-सहित कुण्ड-निर्माण की प्रक्रिया वर्णित है। तृतीय अध्याय के दश श्लोकों में कुण्डों के उपाङ्गों—नाभि, खात, मेखला, योनि, कण्ठ आदि का मापसहित वर्णन है। इस प्रकार कुल अट्ठावन श्लोकों में इस ग्रन्थ में कुण्डनिर्माणसम्बन्धी साङ्गोपाङ्ग जानकारी दी गयी है; जिसके अनुसार कुण्ड की रचना तथा मण्डप-निर्माण एक सरल कार्य हो जाता है।

ग्रन्थकार का परिचय—इस ग्रन्थ का निर्माण पवित्र कृष्णात्रि गोत्र में उत्पन्न श्री बूव शर्मा के पुत्र श्रीमद् विट्ठलदीक्षित ने किया है। यह बात स्वयं ग्रन्थकार ने प्रारम्भ के द्वितीय श्लोक में कही है। उन्होंने इस ग्रन्थ की रचना श्री काशी जी के पुण्यनगर में शाके १५४१ में फाल्गुन शुक्ल द्वादशी, रविवार को आर्द्रा नक्षत्र में भगवान् विश्वनाथ की प्रसन्नता के लिये की है। यह बात ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के अन्तिम श्लोक में स्वीकार की है। इस प्रकार इस ग्रन्थ का निर्माण विक्रम संवत् १६७६ तदनुसार सन् १६२० ईस्वी में हुआ था।

श्री विट्ठलदीक्षित का जन्म शकाब्द १५०९ (संवत् १६४२ विक्रमी, सन् १५८५ ईस्वी) में हुआ था। इस प्रकार ग्रन्थकार ने पैंतीस वर्ष की वय में ही इस ग्रन्थ की रचना की थी। ये फलित ज्योतिष के भी अच्छे विद्वान् थे। इन्होंने मुहूर्तकल्पद्रुम नामक ग्रन्थ की रचना भी की थी। इसके साथ ही इस पर इन्होंने 'मञ्जरी' नामक टीका भी लिखी थी। यह ग्रन्थ तथा इसकी टीका भी काशी में ही लिखी गयी थी। यह टीका चालीस वर्ष की आयु में लिखी गयी थी। टीका के अन्तिम श्लोक में इन्होंने लिखा है—

नन्दाम्बुतिथ्युन्मितशाककाले काशीपुरे विट्ठलदीक्षितेन।
मुहूर्तकल्पद्रुममञ्जरीयं समर्पिता श्रीशिवपादपद्मे।।

मण्डपकुण्डसिद्धि में जो दूसरा श्लोक है, वही प्रथम तीन चरणों में ज्यों का त्यों तथा चतुर्थ चरण में 'मुहूर्तकल्पद्रुम एष चक्रे' लिखकर मुहूर्तकल्पद्रुम ग्रन्थ की समाप्ति में दिया है। वहीं पर ग्रन्थकार ने अपनी कृति की प्रशंसा करते हुए तथा श्रीपतिरचित रत्नमाला को हीन बताते हुए लिखा है—

कल्पद्रुमश्चेत् किमु रत्नमाला चिन्तामणिं कर्करमेव मन्ये।
यदेकदेशे किल मञ्जरीयं सारं विचारं कुरु तत्त्ववेदिन्।।

इस श्लोक में जिस प्रकार से उन्होंने विद्वानों को सार-विचार करके स्वयं की कृति को अपनाने के लिये कहा है, उसी प्रकार मण्डपकुण्डसिद्धि की समाप्ति में भी इनका कथन है—

इति मण्डपकुण्डसिद्धिमेनां रुचिरां विट्ठलदीक्षितो व्यधत्त।
अधिकाशिनगर्युमेशतुष्ट्यै विबुध: शोधयतादिमां विचार्य।।

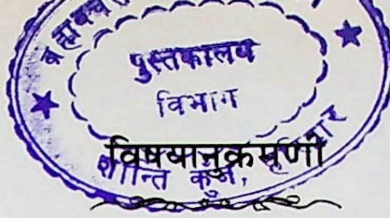
मण्डपकुण्डसिद्धि की किसी-किसी प्रति में एक निम्न श्लोक भी प्राप्त होता है, जिसमें अपनी कृति की श्रेष्ठता का कारण भी ग्रन्थकार ने स्वयं ही बताया है—

अङ्गीकार्या मत्कृतिर्निर्मलेयं कस्मादेवं पण्डितान् प्रार्थयेहम्।।

इस प्रकार मण्डपकुण्डसिद्धि चतुष्कोण के आधार पर सभी कुण्डों का निर्माण करने वाला एक अनुपम ग्रन्थ है।

चैत्र शुक्ल एकादशी
संवत् २०६१ विक्रमी

विदुषामनुचर:
महर्षि अभय कात्यायन



विषयानुक्रमणी





श्रीमद्विट्ठलदीक्षितप्रणीता

मण्डपकुण्डसिद्धिः

(कुण्डमण्डपसिद्धिः)

पाठकोपाह्वबलदेवप्रणीत**बलदा**भाष्यसहित-
मण्डपप्रभाहिन्दीव्याख्योपेता

प्रथमोऽध्यायः

(मण्डपसिद्धिप्रकरणम्)

ग्रन्थारम्भे मङ्गलाचरत्याचार्यः शार्दूलविक्रीडितवृत्तेन—

गाढं ध्वान्तमनेकभानुजठरे राजत्कलाधारिणि
प्रोदञ्चच्छफरीयुगं दरदलत्पद्मेऽणुहीरावलिम्।
स्वर्णोत्तुङ्गगिरिद्वयाधरचरीं दीनां कलिन्दात्मजां
पश्याश्चर्य्यमिदं शिवामिति वदन् स्मेरः शिवः पातु वः ॥१॥

*** बलदाभाष्यम् ***

स्मयत इति स्मेरः, स्मितमुखः शिवो वो युष्मान् पातु रक्षतु। किं कुर्वन्—गौरीम्प्रतीति वदन्। इति किमित्यत आह—अये गौरीदं वक्ष्यमाणमाश्चर्यं कौतुकम्पश्यावलोकय। अनेकसङ्ख्याकानां भानूनां जठरे कुक्षौ (पिचण्डं कुक्षी जठरोदरमित्यमरः) गाढं दृढं (तीव्रैकान्तनितान्तानि गाढबाढदृढानि चेत्यमरः) ध्वान्तमन्धकारम्पश्य—एतन्मिषेण गौरीमस्तकस्थरत्नखचितमुकुटान्तर्गतकेशवर्णनम्। राजन्तीनां स्फुरन्तीनां कलानां षोडशभागानां (कलास्तु षोडशो भाग इत्यमरः) धारिणि दधाने चन्द्रमसीति शेषः। प्रकर्षेण उदिति वितर्केण अञ्चति गच्छतीति (अञ्चु गतिपूजनयोः) तथाभूतं सफर्योर्मत्स्ययोर्युगं द्वयम्पश्य—एतन्मिषेण चन्द्रमुख्या गौर्या नेत्रद्वयवर्णनम्। किञ्च दरमीषत् विकसच्च तत्पद्मञ्च तथाभूत ईषद्विकसितपद्मेऽणूनामतिसूक्ष्माणां हीराणामालिः पङ्क्तिः ताम्पश्य—एतन्मिषेण स्मितगौरीमुखपद्मान्तर्गतदन्तपङ्क्तिवर्णनम्। किञ्च स्वर्णस्य स्वर्णमयस्य उत्तुङ्गम् उन्नतं यद्गिरिद्वयं पर्वतद्वयं तस्याधरे अधस्तात् (अधस्तादपि चाधर इत्यमरः) चरति गच्छत्यत एव दीनां कृशां कलिन्दात्मजां यमुनां पश्य—एतन्मिषेण गौर्या गौरपृथुरङ्गस्तनाधारगतरोमावलीवर्णनम्।।१।।

*** मण्डपप्रभा ***

यक्षेश्वरं प्रणम्यादौ गणनाथञ्च भारतीम् ।
मण्डपकुण्डसिद्धेश्च करोमि मण्डपप्रभा ।।

याजकानां सुखार्थाय मखानाङ्करणाय च ।
मूलादेव्यभिलाषजः अभयकात्यायनोऽहम् ।।

ग्रन्थकार श्री विठ्ठलदीक्षित भगवान् शिवजी के श्रीमुख से माता पार्वती की प्रशंसा के शब्द कहलवाते हुए नमस्कारात्मक मङ्गलाचरण करते हैं—

हे शिवे ! आपके शीर्ष पर रत्नजटित मुकुट अनेकों सूर्यों के समान प्रकाशित हो रहा है; फिर भी आपके केशों की लटें (अलकाएँ) घने अन्धकार का आभास दे रही हैं। यह बड़े ही आश्चर्य की बात है। हे मीनाक्षि ! आपके ये चञ्चल नेत्र ऐसे प्रतीत होते हैं, मानों चन्द्रमा (मुखचन्द्र) में दो मछलियाँ चिपकी हों। आपके मुखकमल में दन्तपङ्क्ति हीरे की पङ्क्तियों-जैसी हैं, मानों अधखिले कमल में हीरे की कणिकाएँ चिपकी हों। आपके इन दोनों पर्वतों के बीच में बहने वाली कालिन्दी (यमुना) कितनी दुर्बल प्रतीत हो रही हैं। इस प्रकार के अनेकों आश्चर्यों को देखो। देवी पार्वती से इस प्रकार मन्द हास्य करते हुए, कहते हुए शिवजी हमारी रक्षा करें।।१।।

इस श्लोक में ग्रन्थकार ने आलङ्कारिक भाषा में भगवान् शिव के मुखारविन्द से ही जगदम्बा पार्वती के सौन्दर्य की प्रशंसा कराते हुए मङ्गलाचरण किया है। इसमें मुकुट को कोटिसूर्यसमप्रभ, नेत्रयुगल को मत्स्ययुगल, केशराशि को अन्धकार, मुख को कमल, दांतों को हीरकपङ्क्ति, स्तनों को पर्वतद्वय तथा उनके मध्य की सूक्ष्म रोमावली एवं श्यामल आभा को कालिन्दी (यमुना) नदी बताया गया है। इस बहाने ग्रन्थकार ने अपनी काव्य-प्रतिभा से भगवती शिवा का सौन्दर्य-वर्णन कर दिया है। पुत्र अपनी माता का सौन्दर्य-वर्णन नहीं कर सकता; अपितु पति ही कर सकता है। अतः कवि ने शिवापति भगवान् शिव से ही उनका सौन्दर्यवर्णन कराकर मङ्गलाचरण किया है। देवी-देवताओं का सौन्दर्य-वर्णन मङ्गलकारक होता है।

प्रसन्नवदन शिवजी कहकर शिवजी को प्रणाम किया गया है। साथ ही ग्रन्थकार ने पार्वती की उपमासदृश धरती माता (भारतमाता) की वन्दना की है; जिसके हिमालय तथा विन्ध्याचल दो स्तनसदृश पर्वत हैं। हिमालय का उत्तुङ्ग शिखर ही जिसका मुकुट है। उत्तुङ्ग वृक्ष ही केशों की अलकाएँ हैं। सरिताएँ ही यमुना है तथा उनमें रहने वाले मत्स्यादि ही उन भारतमाता के नेत्र हैं। वह शस्य-श्यामला है। वही धात्री तथा धरित्री है। पर्वत वाली होने से पार्वती है। यज्ञमण्डप तथा कुण्डों का निर्माण उसी पर होता

है। यज्ञकार्यहेतु सामग्री भी वही प्रदान करती है, इसलिए प्रकारान्तर से ग्रन्थकार ने मातृभूमि की महिमा का वर्णन भगवान् शङ्कर से करवा कर उसके प्रति कृतज्ञता प्रकट कर भारतीय जनता का भी मङ्गल किया है।

स्वाख्यापूर्वकं ग्रन्थनामोपजातिछन्दसाह—

कृष्णात्रिगोत्रे नितराम्पवित्रे पवित्रकर्माऽजनि बूवशर्म्मा।
तत्सूनुना विट्ठलदीक्षितेन विरच्यते मण्डपकुण्डसिद्धिः ॥२॥

बलदाभाष्यम्—पवित्रं शुद्धं, कर्म्म यजनयाजनादिकं यस्यासौ बूवनामको ब्राह्मणः नितराम् अतिशयेन पवित्रे शुद्धे कृष्णात्रिगोत्रेऽजनि प्रादुरभूत्। तस्य बूवशर्म्मणः सूनुना पुत्रेण विट्ठलदीक्षितेन मण्डपकुण्डयोः सिद्धिर्यस्मिन्नसौ ग्रन्थो विरच्यते, क्रियत इत्यर्थः।।२।।

मण्डपप्रभा—अब ग्रन्थकार अपना परिचय देते हुए कहते हैं कि कृष्णात्रिगोत्र, जो कि अत्यन्त पवित्र है, उसमें पवित्र कर्म (यज्ञकार्यादि) करने वाले श्री बूव शर्मा उत्पन्न हुए। उनके पुत्र विट्ठलदीक्षित द्वारा यह 'मण्डपकुण्डसिद्धि' नामक ग्रन्थ विरचित किया जा रहा है।।।२।।

इस श्लोक से स्पष्ट है कि इस ग्रन्थ का नाम 'मण्डपकुण्डसिद्धि' ही है। इसे 'कुण्डमण्डपसिद्धि' नाम से सम्बोधित करना समीचीन नहीं है। ग्रन्थकार ने जो नामकरण किया है, हमें उसे ही आदरसहित ग्रहण करना चाहिये।

कुण्डादिविवक्षुस्तावद्धस्तादिपरिभाषां विपरिताख्यानक्यनुष्टुब्भ्यामाह—

कृतोर्ध्वबाहोः समभूगतस्य कर्त्तुः शरांशः प्रपदोच्छ्रितस्य।
यो वा सहस्तोऽस्य जिनांशकोऽपि स्यादङ्गुलं तत्तदिभांशको यः ॥३॥

यवो यूका च लीक्षा च वालाग्रश्चैवमादयः।
कृतमुष्टिकरो रत्निररत्निरकनिष्ठिकः ॥४॥

बलदाभाष्यम्—कृतौ ऊर्ध्वौ बाहू येन तस्य समायां मुकुरोदरसन्निभायां भुवि पृथिव्यां गतस्य समपादतया स्थितस्य वा प्रपदं पादाग्रं तेन भुवमालम्ब्योच्छ्रितस्य कर्त्तुर्यजमानस्य यः शरांशः पञ्चमांशः स हस्तः। तथा च कात्यायनः—

यजमानेनोर्ध्वबाहुना प्रपदोच्छ्रितेन समस्थितेन वा।। इति।

अस्य हस्तस्य जिनांशकश्चतुर्विंशत्यंशः अपीति निश्चयेन अङ्गुलं स्यात्। तस्याङ्गुलादेर्य इभांशकः अष्टमांशः स यवादिकः स्यात्। तद्यथा अङ्गुलस्याष्टमांशो यवः, यवस्याष्टमांशो यूका, तस्या अष्टमांशो लीक्षा, तस्या अष्टमांशो वालाग्रम्। एवममुना प्रकारेण आदयोऽर्थाद्रथरेण्वादिसंज्ञा ज्ञेया। यथा वालाग्रस्याष्टमांशो रथेरणू, रथेरणोरष्टमांशः त्रसरेणुः, त्रसरेणोरष्टमांशः परमाणुरिति। तथा चादित्यपुराणे—

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रज:।
प्रथमं तत्प्रमाणानां त्रसरेणुं प्रचक्षते।।

त्रसरेणुस्तु विज्ञेयो योऽष्टौ स्यु: परमाणव:।
त्रसरेण्वस्तु ते ह्यष्टौ रथरेणुस्तु संस्मृत:।।

रथरेण्वस्तु ते ह्यष्टौ वालाग्रं तत्स्मृतं बुधै:।
वालाग्रं त्वष्टलीक्षास्तु यूका लीक्षाष्टकं स्मृतम्।
अष्टौ लीक्षायवं प्राहुरङ्गुलन्तु यवाष्टकम्।।

कृता मुष्टिर्येन स चासौ कर: मुष्टिबद्धकर इत्यर्थ:। रत्नीरत्निसंज्ञक: स्यात्। सा त्वेकविंशत्यङ्गुलात्मिका तथा अकनिष्ठिको मुक्तकनिष्ठिक: कर अरत्निरर्थादरत्निसंज्ञ: स्यात्सा तु द्वाविंशत्यङ्गुलात्मिका। तथोक्तञ्चादित्यपुराणे—

रत्निस्त्वङ्गुलपर्वाणि विज्ञेयस्त्वेकविंशति:।
अरत्निरकनिष्ठ: स्यात्षोडशांशवियुक्कर:।। इति।।३-४।।

मण्डपप्रभा—अब आचार्य मण्डप एवं कुण्ड के लिये निर्माण-कार्य में प्रयुक्त होने वाली माप की ईकाइयों का वर्णन करते हुए सर्वप्रथम हस्त-परिमाण समझाते हैं—

जो यज्ञकर्त्ता यजमान है, उसे दोनों भुजाएँ ऊपर की ओर करके सीधा खड़ा होना चाहिये। फिर उसके पैर की अङ्गुलियों के अग्रभाग से लेकर ऊपर खड़े किये गये हाथों की मध्यमा अङ्गुली पर्यन्त नापना चाहिये। यह माप रस्सी, सूत्र या फीते से की जा सकती है। वह नाप जितनी भी हो, उसका पाँचवाँ भाग एक हस्त का माप (हाथ की नाप) माना गया है। इस प्रकार यह माप यजमान के शरीर के अनुसार होगा, शासकीय या राजकीय मापसूत्र के अनुसार नहीं। अत: इस माप में प्रति व्यक्ति अन्तर होना भी स्वाभाविक है, जो कि यज्ञकर्त्ता को फलप्राप्ति हेतु आवश्यक भी है। यजमान के माप के अनुसार निश्चित हस्तप्रमाण से ही मण्डप, कुण्ड, सूत्र, ध्वज, पताका, तोरण, द्वार आदि के परिमाण को मापा जाता है।

एक हाथ में जिनांशक अर्थात् चौबीस अङ्गुल होते हैं। इस प्रकार एक अङ्गुल का प्रमाण एक हाथ का चौबीसवाँ भाग होता है। फिर उस अङ्गुल का इभांश (अष्टमांश) यव होता है। यव का अष्टमांश यूका तथा यूका का अष्टमांश लिक्षा या लीक्षा होता है। लिक्षा का अष्टमांश वालाग्र, वालाग्र का अष्टमांश रथरेणु तथा रथरेणु का अष्टमांश त्रसरेणु होता है। उस त्रसरेणु का भी आठवाँ भाग परमाणु होता है। कोहनी से लेकर मुट्ठी बाँधे हुए हाथ की जो लम्बाई होती है, उसको 'रत्नि' कहते हैं। यदि इस बन्द मुट्ठी में से कनिष्ठिका अङ्गुली को माप से अलग कर दें, फिर माप करें तो कोहनी से लेकर बन्द मुट्ठी की तर्जनी-पर्यन्त यह माप 'अरत्नि' (रत्निरहित) कहलाती है।

'रत्नि' का अर्थ कनिष्ठा अङ्गुली होता है तथा 'अरत्नि' का अर्थ विना कनिष्ठा के

है। हाथ में कोहनी (कूर्पर) से लेकर मणिबन्ध तक कनिष्ठा की ओर जो अस्थि होती है, वह 'बहि:प्रकोष्ठास्थि' कहलाती है। अंग्रेजी में उसे अल्ना (Ulna) कहते हैं तथा अंगूठे की जड़वाली दूसरी जो समानान्तर अस्थि है, वह अन्त:प्रकोष्ठास्थि (Radius) कहलाती है। अस्तु; जब नाप में कूर्पर सन्धि से कनिष्ठा तक का भाग ग्रहण करते हैं, तब वह 'रत्नि' कहलाता है और इक्कीस अङ्गुल परिमाण का होता है; परन्तु जब वही माप मध्यमाङ्गुली-पर्यन्त (बन्द मुट्ठी में) करते हैं तो उसे 'अरत्नि' कहते हैं, जिसकी माप बाईस अङ्गुल होती है। रत्नि तथा अरत्नि का स्पष्टीकरण आदित्यपुराण में भली-भाँति किया गया है। इस प्रकार यहाँ वर्णित माप की ईकाइयाँ निम्न प्रकार हैं—

आठ परमाणु	=	एक त्रसरेणु	आठ यूका	=	एक यव
आठ त्रसरेणु	=	एक रथरेणु	आठ यव	=	एक अङ्गुल
आठ रथरेणु	=	एक वालाग्र	चौबीस अङ्गुल	=	एक हाथ
आठ वालाग्र	=	एक लीक्षा	इक्कीस अङ्गुल	=	एक रत्नि
आठ लीक्षा	=	एक यूका	बाईस अङ्गुल	=	एक अरत्नि

इस ग्रन्थ में केवल वालाग्र तक ही माप का कथन है; क्योंकि व्यवहार में तो लिक्षादि की माप का प्रयोजन ही नहीं रहता है। 'अरत्नि' तथा 'रत्नि' का स्पष्टीकरण कोशग्रन्थों में इस प्रकार है—

अरत्निस्तु निष्कनिष्ठेन मुष्टिना। (अमरकोश)

मध्यमाङ्गुलिकूर्परयोर्मध्ये प्रामाणिकः करः।
बद्धमुष्टिकरोरत्निररत्निरकनिष्ठिकः ॥ (हलायुध)

दिक्साधनं विवक्षुस्तावदितिकर्त्तव्यतां स्रग्धरयाह—

ज्ञात्वा पूर्वं धरित्रीं दहनखननसम्प्लावनैः संविशोध्य
पश्चात्कृत्वा समानां मुकुरजठरवद्वाचयित्वा द्विजेन्द्रैः ।
पुण्याहं कूर्मशेषौ क्षितिमपि कुसुमाद्यैः समाराध्य शुद्धे
वारे तिथ्यां च कुर्यात्सुरपतिककुभः साधनं मण्डपार्थम् ॥५॥

बलदाभाष्यम्—पूर्वमादौ धरित्रीं पृथिवीं ज्ञात्वा इयम्भूर्मण्डपादिकर्त्तुं योग्या न वेति विचार्य। तथोक्तं मुहूर्तमार्त्तण्डे—

स्वभ्रं हस्तमितं खनेदिह जलं पूर्णं निशास्ये न्यसेत्
प्रातर्दृष्टजलं स्थलं सदजलं मध्यन्त्वसत्स्फाटितम्।
स्वेतारक्तकपीतकृष्णवसुधा स्वादुः कटुस्तिक्तका।
काषाया घृतशोणितान्नमदिरागन्धा शुभा विप्रतः।
सद्मप्रश्नकृतो मुखात्प्रथमतो वर्गादिवर्णोद्गम-
श्चेत्तद्दिग्गतमादिशेत्तु हपयैः शल्यं सुधीर्मध्यतः॥ इति ।

अन्यच्च शारदातिलके—

ईशकोणप्लवा सा च कर्तुः श्रीदा सुनिश्चितम्।
पूर्वप्लवा वृद्धिकरी वरदा तूत्तरप्लवा।
शेषकाष्ठाप्लवा भूमिर्धनायुर्गृहनाशिनी।।
ब्राह्मणी भूः कुशोपेता क्षत्रिया शरसङ्कुला।
कुशकाशाकुला वैश्या शूद्रा सर्वतृणाकुला।।

इत्यादिना ज्योतिर्विदा कर्मयोग्यां शुद्धां भूमिं ज्ञात्वा पश्चादनन्तरं दहनं अग्निना भस्मीकरणम्, एतेन तुषकण्टकादेर्नाशो जायते। खननं प्रसिद्धम्, एतेन वल्मीकपाषाणादेर्नाशो जायते। सम्यक् प्लावनं हलादिना चालनम्, एतेन विदीर्णायाः भूमेर्विवरादीनां नाशः समता च जायते। यतः शारदातिलके—

स्फुटिता च सशल्या च वल्मीकारोहिणी तथा।
दूरतः परिवर्ज्या भूः कर्त्तुरायुर्धनापहा।। इति ।

अत एतैर्भूमिं संशोध्य मुकुरजठरवत् दर्पणोदरवत् समानां निम्नोन्नतरहितां कृत्वा द्विजेन्द्रैः वेदपाठिभिर्ब्राह्मणैर्यतस्त एव ब्राह्मणेषु श्रेष्ठाः पुण्याहं वाचयित्वा कुसुमाद्यैः पुष्पाद्यैः पञ्चोपचारैः षोडशोपचारैर्वा कूर्मशेषौ कच्छपशेषनागौ क्षितिं पृथिवीम्, अपिशब्दाद्वाराहं समाराध्य सम्पूज्य शुद्धे वारे शुद्धायां तिथ्याञ्च अर्थाज्ज्यौतिःशास्त्रोक्ते मुहूर्ते मण्डपार्थं मण्डपनिर्माणाय सुराणां देवानाम्पतिरिन्द्रस्तस्य ककुभः प्राचीदिशः साधनं कुर्यादिति।।५।।

मण्डपप्रभा—मण्डप-रचना के पूर्व निम्न कर्मों को सम्पन्न कर लेना चाहिये—

धरती का विनिश्चय—सर्वप्रथम जिस भूमि पर मण्डप-निर्माण होगा, उसका निश्चय कर लेना चाहिये। वह भूमि यजमान के स्वयं स्वामित्व की होनी चाहिये। परायी भूमि में यज्ञादि करने से फलप्राप्ति में न्यूनता आ जाती है। फिर जिस भूमि में यज्ञ करना हो, वह ऐसे स्थान पर हो जहाँ यातायात, प्रचुर जल तथा आवासादि में असुविधा न हो। उस भूमि की परीक्षा करने की विधि मुहूर्तमार्त्तण्ड (६-४) में इस प्रकार वर्णित है—

भूमि का शुभाशुभ फल जानने के लिये उक्त चयनित भूमि में एक वर्ग-हाथ का चतुष्कोण खात बनाकर उस गर्त को सूर्यास्त के समय जल से भर दें। यदि दूसरे दिन प्रातःकाल उस गड्ढे (श्वभ्र) में जल शेष हो अथवा पिलपिला-सा गीला हो तो शुभ होता है। यदि कीचड़युक्त हो तो मध्यम फलप्रद जानना चाहिये। यदि उसका जल पूर्णरूपेण सूख जाय तथा उसमें दरारें पड़ जायँ तो उस भूमि को अशुभ फलप्रद जानना चाहिये। यथा—

श्वभ्रं हस्तमितं खनेदिह जलं पूर्णं निशास्ये न्यसेत्।
प्रातर्दृष्टजलं स्थलं सदजलं मध्यं त्वसत्स्फाटितम्।।

शारदातिलक के अनुसार जिस भूमि का ढलान ईशान कोण की ओर हो, वह कर्त्ता के लिये श्रीदायक होती है। पूर्व की ओर ढलान वाली हो तो वृद्धिकारक होती है। उत्तर की ओर बहाव वाली भूमि वरप्रदायक होती है। शेष दिशाओं में ढलान वाली भूमि धन, आयु, घर आदि का नाश करती है। इसी प्रकार वल्मीक, हड्डी, आदि शल्य से युक्त भूमि भी अशुभ होती है।

दहनकर्म— जिस भूमि पर मण्डप का निर्माण करना हो उसके खर-पतवार, काँटे आदि नष्ट करने के लिये उसे आग से जला कर शुद्ध करे।

खननकर्म— दहनोपरान्त भूमि को समतल कराने के लिये कुदाल, फावड़ा, हल आदि से खुदवाये, जिससे भूमि चौरस तथा समतल हो जाय।

सम्प्लावनकर्म— दहन, खनन के उपरान्त भूमि को जल से पूरित कर दे, जिससे एक तो पानी के सम्प्लावन (बहाव) से भूमि के ढाल का पता लग जायेगा और दूसरे भूमि छिद्र एवं विवरों से रहित तथा सुदृढ़ हो जायेगी; जिसे लीपने में भी सुविधा रहेगी। भूमि का ढाल ईशान, उत्तर या पूर्व की ओर ही होना चाहिये।

सूक्ष्म समतलीकरण— पूर्वोक्त तीन क्रियाओं द्वारा स्थूल रूप से भूमि समान हो जायेगी; परन्तु ग्रन्थकार के अनुसार उसे 'समानां मुकुरजठरवत्' बनाना चाहिये अर्थात् जिस प्रकार से दर्पण सपाट, समतल एवं चिकना होता है, उसी प्रकार से भूमि को भी बना देना चाहिये।

स्वस्तिवाचन एवं पुण्याहवाचन—भूमि के सुयोग्य बन जाने पर द्विजेन्द्रों (विद्वान् ब्राह्मणों) को बुलाकर शास्त्रोक्त विधि के अनुसार स्वस्तिवाचन तथा पुण्याहवाचन सम्पन्न कराना चाहिये।

भूमिपूजन—पुष्पादि से अथवा पञ्चोपचारादि से अथवा षोडशोपचारादि से जो भी सम्भव हो भूमिपूजन करना चाहिये; क्योंकि पृथ्वी पर ही सम्पूर्ण कृत्य सम्पन्न होते हैं। अतः अथर्ववेदोक्त पृथ्वीसूक्तों का पाठ भी कराना चाहिये।

शुभ मुहूर्त में ककुभसाधन— सुरपति इन्द्र को कहा जाता है तथा ककुभ का अर्थ दिशा है। इन्द्र पूर्व दिशा के स्वामी हैं; अतः सर्वप्रथम पूर्व दिशा का साधन शुभ मुहूर्त में करे। प्राची-साधन के उपरान्त अन्य दिशायें सुगमता से साधित हो जाती हैं। भूमि-शोधनोपरान्त शुभ समय में, शुभ तिथि-वार में, शुभ नक्षत्र में जब भूशयन, भूरज आदि दोष न हों तब भूमि पर प्राची दिक्साधन करें; जैसा कि शारदातिलक में कहा भी है—

नक्षत्रराशिवाराणमनुकूले शुभेऽहनि।
ततो भूमितले शुद्धे तुषाराङ्गारवर्जिते।।
पुण्याहं वाचयित्वा तु रचयेच्छुभमण्डपम्।।

पुण्याहादिवाचन के साथ कूर्मपूजन तथा शेषनाग का पूजन भी अवश्य कर लेना चाहिये।।५।।

स्थूलपूर्वापरसाधनमुपजातिविपरीताख्यानकीभ्यामाह—

नृपाङ्गुलैः सम्मितकर्कटेन सूत्रेण वा वृत्तवरं विलिख्य।
रव्यङ्गुलं शङ्कुममुष्य मध्ये निवेशयेत्खाक्षिमिताङ्गुलीभिः ।।६।।

चतसृभिश्चापि ऋजूत्तमाभिः संस्पृष्टशीर्षन्तु समेषिकाभिः ।
तच्छङ्कुभा यत्र विशेदपेयाद्वदेत्क्रमात्ते वरुणेन्द्रकाष्ठे ।।७।।

बलदाभाष्यम्—नृपाङ्गुलैः सम्मितकर्कटेन अर्थाद् व्यासार्धेन वा अथवा सूत्रेणै-तदुक्तम्भवति षोडशाङ्गुलसूत्रस्यैकमग्रमेकेन हस्तेन स्थिरं कृत्वा धृतापरप्रान्तस्यान्यहस्तस्य भ्रामणेन वृत्तवरमुत्तमं वृत्तं विलिख्य। अमुष्यास्य वृत्तस्य मध्ये केन्द्रबिन्दौ चतसृभिः खाक्षि-मिताङ्गुलीभिर्विंशत्यङ्गुलपरिमिताभिः ऋजुभिः सरलाभिरुत्तमाभिर्दृढाभिः समेषिकाभिरेतदुक्तम्भवति परिधेस्तुल्यं चतुर्विभागं कृत्वा प्रतिभागमेकैकं कीलकं निखनेदनन्तरं प्रतिकीलकं पूर्वोक्त-लक्षणोपेताश्चतस्रः पट्टिकां निबध्य ताभिरपरप्रान्तैः संस्पृष्टशीर्षमर्थात्तासामपरप्रान्तं शङ्कुशीर्षे निधाय एवंकृते कर्णसमत्त्वाच्छङ्कुसमत्वं भवेदेवम्भूतं रव्यङ्गुलं द्वादशाङ्गुलं शङ्कुं निवेश-येत्स्थापयेत्। तस्य शङ्कोर्भा छाया यत्र बिन्दौ प्रविशेत्प्रवेशं करोति यत्र चापेयान्निर्गच्छेत् क्रमात्ते वरुणेन्द्रकाष्ठे पश्चिमप्राचीदिशौ वदेत्कथयेदित्यर्थः। सूर्योदये छायाया अनन्तत्त्वात्तदग्रं पश्चिमदिशि वृत्तबहिर्गतमासीदनन्तरं यथा यथा रविः क्षितिजादुपरि गच्छेत्तथा तथा सङ्कोच्यमाना छायाल्पा स्याद्यदा तु षोडशाङ्गुलसमा तदा पश्चिमदिशि परिधौ कुत्रचिद्बिन्दौ प्रविशति तत्र वरुणदिगेवं मध्याह्नादनन्तरं सूर्यस्य पश्चिमदिक्स्थत्वाद् वृद्ध्युन्मुखी छाया पूर्वदिशि गच्छेद्यदा तु षोडशाङ्गुलतुल्या स्यात्तदा पूर्वदिशि कुत्रचिद्बिन्दौ परिधिं भित्वा बहिरपेयात्तत्रेन्द्रदिगिति सर्वं निरवद्यम्।।६-७।।

मण्डपप्रभा—भूमिशाोधनोपरान्त दिक्साधन कर्म अति आवश्यक है। दिङ्मूढ़ता की स्थिति में मृत्यु-भय तक रहता है, अतः दिक्साधन अवश्य करना चाहिये। यहाँ स्थूल दिक्साधन किस प्रकार करना चाहिये, इसका उल्लेख किया गया है—

नृपाङ्गुल अर्थात् सोलह अङ्गुल के सूत्र से अथवा परकाल (कर्काटक) को सोलह अङ्गुल फैलाकर समतल भूमि पर वृत्तसाधन करें। यदि परकाल न हो तो समतल भूमि पर एक लोहे या काठ का कील (शङ्कु) गाड़ दें। फिर उसमें सोलह अङ्गुल से द्विगुणित माप का सूत्र लेकर दोहरा करके (उस शङ्कु में) डाल दें। उसे चारो ओर अपने गाँठदार अग्र पर खड़िया-मिट्टी का ढेला लगाकर अथवा अन्य कील आदि लगाकर शङ्कु के सब दिशाओं में घुमा दें तो एक वर्तुल बन जायेगा। अब जो कील (शङ्कु) गाड़ा है, उसके शीर्ष पर दो लकड़ियाँ, जो कि लम्बी हों और उनके मध्य में छेद हो, उनके उस मध्य छिद्र को शङ्कु के शीर्ष में (चूड़ा में) इस प्रकार प्रविष्ट कर दें कि वे एक-दूसरे को तिरछा

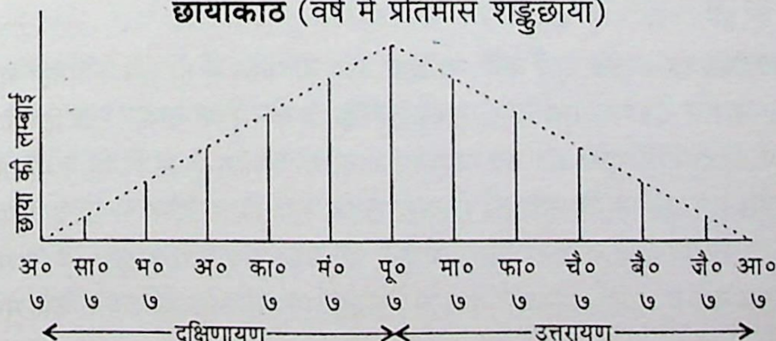
काटकर नब्बे अंश का कोण बनाती हों। उन लकड़ियों की लम्बाई प्रत्येक की चालीस अङ्गुल हो, मध्य में बीस अङ्गुल पर छेद करने से वे दोनों ओर बीस-बीस अङ्गुल कीं दिखेंगी तथा जो शङ्कु गाड़ा जाये वह द्वादशाङ्गुल हो, अथवा शङ्कु का शीर्ष सम चतुरस्र रखकर उसके चारो दिशाओं में छेद कर उन्हीं में प्रत्येक में बीस अङ्गुल के काष्ठ को प्रविष्ट कर दें। तात्पर्य यह है कि वे चारो काष्ठ शङ्कु के चारो दिशाओं में शङ्कु से स्पर्श करते रहें। फिर प्रातःकाल देखें कि उस शङ्कु की छाया प्रातःकाल से मध्याह्नपर्यन्त उस वर्तुल के जिस भाग में प्रवेश करे, उसमें चिह्न लगा दें। वह पश्चिम दिशा होगी। फिर मध्याह्नोपरान्त सूर्यास्त-पर्यन्त वह छाया जिस स्थान से निर्गत हो, उसमें भी चिह्न लगा दें। जहाँ से छाया का निर्गम होता है, वही पूर्व दिशा होती है। यह प्राची-ज्ञान का स्थूल प्रकार है।

स्थूल इसलिये है कि वर्ष में केवल दो ही दिनों में सूर्य ठीक पूर्व दिशा में निकलता है और वे दोनों विषुव दिन कहलाते हैं। उन दो दिनों में ही दिन तथा रात्रि का मान समान होता है। जिस दिन सूर्य मीन राशि के ७° अर्थात् सायन मेषराशि के शून्य अंश पर होता है, वह दिन विषुव दिन होता है। उस दिन के बाद सूर्य उत्तर गोल में प्रविष्ट होते हैं। यह दिन २१ मार्च के लगभग होता है। इसी प्रकार दूसरा विषुव दिन सितम्बर मास की २२ दिनांक के लगभग होता है। तब सूर्य निरयण कन्या सङ्क्रान्ति के ७° पर अर्थात् सायन तुला के शून्य अंश पर होते हैं। इस दिन सूर्य दक्षिण गोल में प्रविष्ट होते हैं। इन दो ही दिनों में ज्योतिषी लोग किसी स्थान की पलभा का भी ज्ञान करते हैं। जैसा कि ग्रहलाघव में कहा भी है—

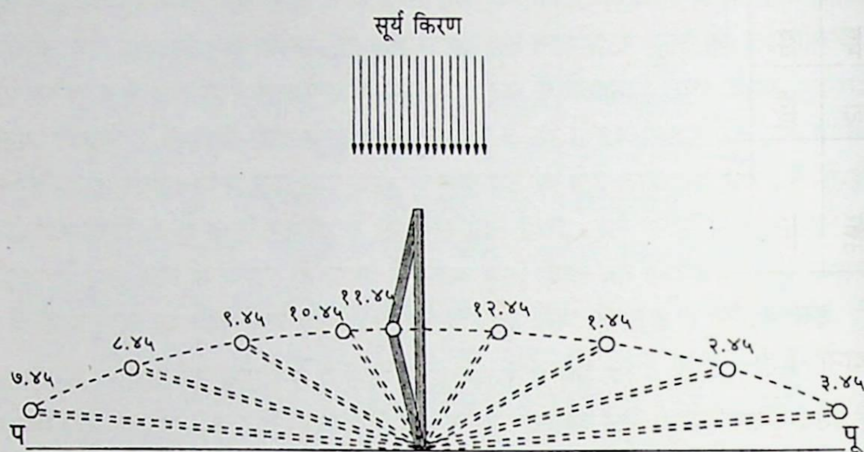
मेषादिगे सायनसूर्यभागे दिनार्धभा या पलभा भवेत्सा।

इस शङ्कु के द्वारा मध्याह्नकाल में जो छाया बनती है। वह वर्ष के भिन्न-भिन्न दिनों में अलग-अलग प्रमाण की होती है। अतः यदि प्रतिमान में छाया की लम्बाई सूर्य के सात अंश गत होने पर नापी जाय तो वह बढ़ती-घटती रहती है (आगे का चित्र देखिये—चित्र में दोनों छोरों पर आषाढ़ मास अर्थात् निरयण मिथुन राशि के सात अंश सूर्य पर छाया सबसे कम है तथा पूष अर्थात् धनु के सात अंश पर सबसे अधिक है)।

छायाकाठ (वर्ष में प्रतिमास शङ्कुछाया)



मध्य दिन में छाया का रेखाचित्र



इसी प्रकार से मध्याह्न समय विषुव दिन को शङ्कु की छाया पृथ्वी के उत्तरी गोलार्ध में ठीक उत्तर दिशा में रहती है। अन्य दिनों में वह कुछ पूर्व या पश्चिम की ओर ठीक उत्तर से विचलित रहती है। इसी कारण अगले श्लोक में पूर्वोक्त प्राची-साधन को सङ्क्रान्ति के अनुसार संशोधित करने का निर्देश किया गया है।।६-७।।

सूक्ष्मप्राचीसाधनं शालिन्याह—

कर्के कीटे गोमृगे यूकया सा द्वाभ्यां चाल्या सिंहकुम्भत्रिकेऽपि।
यां वै काष्ठां भानुमान् याति तस्यां चाल्या द्वन्द्वे कार्मुके चालनं न।।८।।

बलदाभाष्यम्—कर्के कर्कसङ्क्रान्तौ कीटे वृश्चिकसङ्क्रान्तौ गो वृषो मृगो मकरस्तयोः सङ्क्रान्तौ च यूकयैकया यूकया। सिंहः प्रसिद्धः, कुम्भोऽपि प्रसिद्धः, स एव ताभ्यां त्रिकेऽर्थात्सिंहकन्यातुलाकुम्भमीनमेषसङ्क्रान्तौ द्वाभ्यां यूकाभ्यां सा पूर्वसाधिता प्राची चाल्या स्थानान्तरं नेयेत्यर्थः। कस्यां दिशि चाल्येत्यतश्चालनदिशमाह—वै इति निश्चयेन भानुमान् रविर्यां काष्ठां दिशं अयनवशेन याति गच्छति तस्यां दिशि चाल्या। किञ्च द्वन्द्वे मिथुने कार्मुके धनुषि च चालनं न स्यात्।।८।।

मण्डपप्रभा—जब सूर्य कर्क, वृश्चिक, वृष या मकर में हों तब उस छाया में एक यूका का चालन दें। जब सूर्य सिंह, कुम्भ तथा इनसे तीन राशि अर्थात् तुला, मेष, मीन, कन्या में हों तब दो यूका का चालन करें। अब यह चालन किस दिशा की ओर करें, यह बताते हुए श्लोक के उत्तरार्ध में कहा है कि सूर्य जिस दिशा में हों उस दिशा में अर्थात् उत्तरायण सूर्य में उत्तर दिशा में तथा दक्षिणायन सूर्य में दक्षिण दिशा में छाया का चालन करना चाहिये। मिथुन तथा धनु के सूर्य में चालन नहीं करना चाहिये।।८।।

विभिन्न सङ्क्रान्तियों में छायाचालन का चक्र

मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुम्भ	मीन	सङ्क्रान्ति
दो	एक	०	एक	दो	दो	दो	एक	०	एक	दो	दो	चालन-प्रमाण
उत्तर	उत्तर	चालन नहीं	दक्षिण	दक्षिण	दक्षिण	दक्षिण	दक्षिण	चालन नहीं	उत्तर	उत्तर	उत्तर	चालन की दिशा

इस श्लोक में कथित दिशाशुद्धि दक्षिण भारत के बारह अक्षांश के समीपवर्ती स्थानों में ही सम्भव है; अन्यत्र नहीं।

उदग्दक्षिणदिशो: साधनं शालिन्याह—

रज्जुं द्विघ्नां मध्यचिह्नां सपाशां प्राचीशङ्कौ पश्चिमे चापि दत्वा।
कर्षेद्धीमान्दक्षिणे चोत्तरे च तच्चिह्ने स्याद्दक्षिणा चोत्तरा दिक् ।।९।।

बलदाभाष्यम्—धियो विद्यन्तेऽस्मिन्निति धीमान् बुद्धिमान् कुण्डमण्डपादिकरणे यावान् विस्तारस्तद्द्विगुणितां तथा षोडशहस्तमण्डपे द्वात्रिंशद्धस्तमितां मध्येऽर्धभागे चिह्नाम् अङ्कितां सपाशां पाशद्वयोपेतां रज्जुं शङ्क्वादिनिर्मितं डोरकमित्यर्थ:, कृत्वेति शेष:। तत्पाशद्वयं प्राच्यां पूर्वदिशि य: शङ्कु: कीलकस्तस्मिन् च पुन: पश्चिमे पश्चिमदिश्यपि शब्दाद्य: शङ्कुस्तस्मिन्दत्वा प्रोतं कृत्वा पूर्वाङ्कितार्धचिह्नं धृत्वेति शेष:। दक्षिणे दक्षिणदिशि चात्पुनरुत्तरे उत्तरदिशि चकारान्निश्चयेन कर्षेत्। तच्चिह्ने तदर्धाङ्कितभूमौ दक्षिणा च पुनरुत्तरा दिक् स्यात्।।९।।

मण्डपप्रभा—इस श्लोक में पूर्व एवं पश्चिम दिशा-साधनोपरान्त उत्तर-दक्षिण का साधन बताते हैं—

बुद्धिमान् यज्ञाचार्य या कर्मठ को चाहिए कि उसे जितने माप का मण्डप बनाना हो उतने माप से द्विगुणित सूत्र (रस्सी) ले, उसके मध्य में गाँठ लगा दे तथा दोनों अग्रों पर पाश (फन्दा) बना दे। उस रज्जु का एक अग्र पूर्व में तथा दूसरा अग्र पश्चिम में करे और वहाँ स्थापित कीलों में फँसा दे। फिर मध्य के गाँठ वाले स्थान पर उस रज्जु को भूमि पर स्थिर कर दे। फिर दूसरे दो व्यक्ति उस पूर्व-पश्चिम की रेखा को काटते हुए उत्तर-दक्षिण दिशा में रज्जु को खींचकर उसके मध्य की गाँठ को दक्षिण तक ले जायँ; वहाँ दक्षिण दिशा का चिह्न कल्पित करें तथा दूसरी ओर उत्तर दिशा में उत्तर दिशा मान लें। उन दोनों उत्तर-दक्षिण स्थानों पर भी शङ्कु-निधान कर देना चाहिये, जिससे उत्तर तथा दक्षिण दिशा स्पष्ट हो जायेंगी।।९।।

प्रकारान्तरेण दिक्साधनं वसन्ततिलकेनाह—

निशि वा श्रवणोदये दिगैन्द्री गुरुभस्योदयनेऽथ वह्निभस्य।
सुरवर्धकिवायुभान्तरालेऽप्यमुतः साधय पूर्ववच्च याम्याम् ॥१०॥

बलदाभाष्यम्— वा अथवा निशि रात्रौ श्रवणस्योदयोऽर्थाद्दर्शनेऽथवा गुरुभस्य पुष्यस्योदयेऽथवा वह्निभस्य कृत्तिकाया दर्शनेऽथवा सुराणां देवानां वर्धकिस्त्वष्टा वायुः प्रसिद्धस्तयोर्भे चित्रास्वात्यौ तयोरन्तराले मध्ये ऐन्द्री दिगेतदुक्तं भवति दूरवीक्षणयन्त्रेण रात्रौ श्रवणस्य पुष्यस्य कृत्तिकायाश्चोदयं दृष्ट्वा तद्यन्त्रं स्थिरं कृत्वा तदग्राद्भूमौ लम्बं पातयेत्। लम्बमूले प्राची दिक्। सुरवर्धकिवायुभान्तराल इत्यस्य वैशद्यार्थमग्रिमश्लोके द्रष्टव्यम्। चात्पुनरमुत ऐन्द्री दिक्तः पूर्ववद्रज्जुं द्विघ्नामितिवद्याम्यां दक्षिणदिशं साधयेदिति।।१०।।

मण्डपप्रभा—अब इस श्लोक में आकाशस्थित नक्षत्रों के वेध द्वारा पूर्व दिशा का ज्ञान करने को बताया है। तदनुसार रात्रि के समय में पूर्वी क्षितिज पर जहाँ पर श्रवण नक्षत्र अथवा गुरु का नक्षत्र अर्थात् पुष्य नक्षत्र अथवा वह्नि (कृत्तिका) नक्षत्र उदित हों, उसी दिशा में पूर्व जानना चाहिये। अथवा चित्रा नक्षत्र एवं स्वाति नक्षत्र—इन दोनों के मध्य में पूर्व दिशा होती है। इस प्रकार पूर्व-पश्चिम दिशाओं का ज्ञान करने के उपरान्त उत्तर एवं दक्षिण का ज्ञान कर लें।।१०।।

चित्रास्वात्योरन्तरतः कथं प्राचीसाधनमित्यस्योत्तरमनुष्टुभाह—

चित्रां विध्वैकया स्वातिमन्ययापि शलाकया।
तिर्यक्स्थान्तरचिह्नात्तु द्विमूले स्यात्स्फुटेन्द्रदिक् ॥११॥

बलदाभाष्यम्—तु पुनः द्वयोः शलाकयोर्मूले, दत्तदृष्टिर्द्रष्टेति शेषः। एतदुक्तं भवति—समभूमौ द्रष्ट्युच्छ्रायमितस्तम्भोपराष्टदारुनिर्मितयोस्तुल्यशलाकयोश्चैकैकमग्रं लौहकण्टकादिना शिथिलं यथा भवति तथा जटितं कृत्वा तत्र दृष्टिं निधायैकया चित्रामन्यया स्वातीं विध्वा ते तत्र स्थिरीकृत्य तयोरपरप्रान्तद्वयमध्ये तिर्यक्स्था तिरश्चीनस्था यान्यशलाका तस्या अन्तरे मध्ये यच्चिह्नं तस्माद्भूमौ लम्बपातेन लम्बमूले स्फुटा स्पष्टेन्द्रदिक् प्राची दिक् स्यादिति।।११।।

मण्डपप्रभा—अब चित्रा तथा स्वाति नक्षत्रों के मध्य में पूर्व दिशा का साधन किस प्रकार करें,यह स्पष्ट करते हैं—एक शलाका से चित्रा नक्षत्र का वेध करें तथा दूसरी शलाका से स्वाति का वेध करें। स्वाति नक्षत्र आकाशगत शून्य अक्षांश से १५ अक्षांश दक्षिण से कुछ न्यून पर स्थित है तथा स्वाति नक्षत्र आकाशीय शून्य अक्षांश के दक्षिण में १५ अंश से कुछ अधिक है; अतः इन दोनों के मध्य में लगभग पूर्व दिशा होती है। तीसरी शलाका से मध्य का साधन कर लिया जाता है। शलाकाओं की अपेक्षा यदि वेधकार्य पोली नलिकाओं से किया जाय तो अति उत्तम होगा।।११।।

उक्त शलाकाओं की सीध में भूमि पर नीचे चिह्न बना देना चाहिये जिससे भूमि पर दिशाओं का साधन हो जाय।

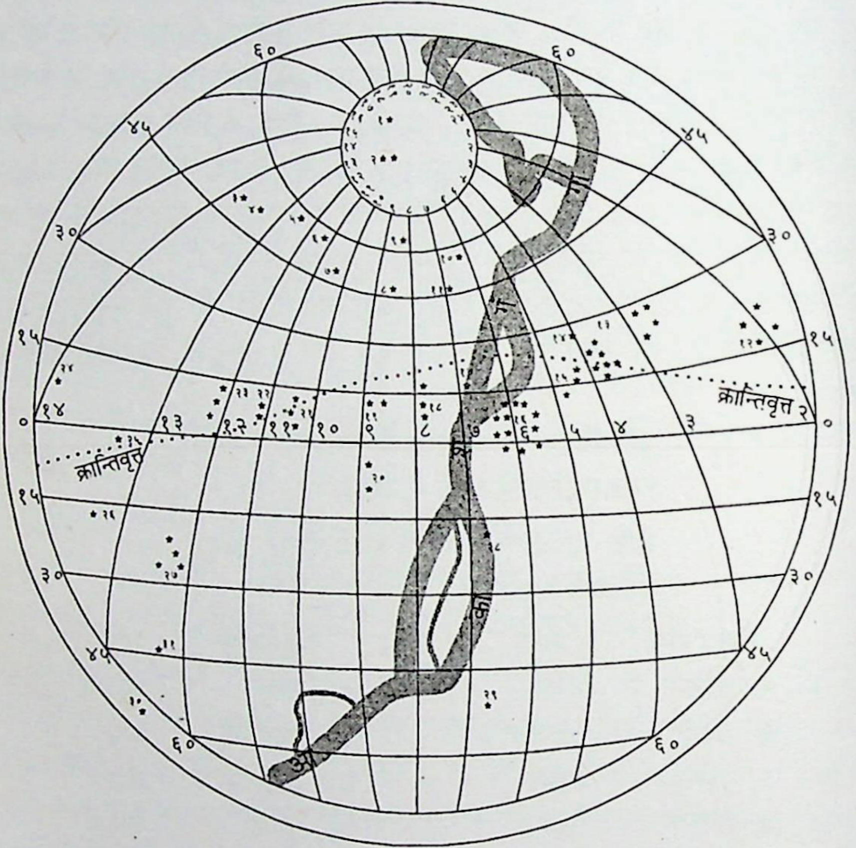
नक्षत्रज्ञान—यह आवश्यक नहीं है कि कि यज्ञीय कर्मकाण्ड का विद्वान् नक्षत्रों से भी परिचित हो; क्योंकि मुगलकाल में हिन्दुओं की आकाश-दर्शन की प्रणाली लुप्त हो गयी और अब घरों के भीतर बारहों मास रहने वालों के लिये तो यह और भी कठिन है। कृत्तिका नक्षत्र ठीक पूर्व दिशा में है, वैदिक काल में इससे दिशा-ज्ञान का निर्देश ब्राह्मणग्रन्थों में मिलता है। यहाँ कर्मठ विद्वानों की सुविधा के लिये आकाश के तीन नक्षत्रचित्र प्रदर्शित हैं, जिनमें एक फाल्गुन मास के लिये, दूसरा भाद्रपद मास के लिये तथा तीसरा पौष मास के लिये है। इन तीन नक्षत्रों के आधार पर यदि रात्रि में नभ का निरीक्षण किया जाय तो सुनिश्चित रूप से नक्षत्रों की पहचान हो जायेगी। फाल्गुन मास के नक्षत्र में पूर्वी क्षितिज पर उत्तर की ओर चित्रा तथा दक्षिण की ओर स्वाति के तारे स्पष्ट दिख रहे हैं। इन नक्षत्रों में केवल एक-एक तारा ही होता है। विश्वकर्मप्रकाश में कहा भी है—

कृत्तिकोदयत: प्राची प्राची स्याच्छ्रवणोदये।
चित्रास्वात्यन्तरे प्राची दिनप्राची रवे: स्थिता:।।

यदि वा श्रवणं पुष्यं चित्रास्वात्योर्यदन्तरम्।
एतत्प्राची दिशारूपम्..।।

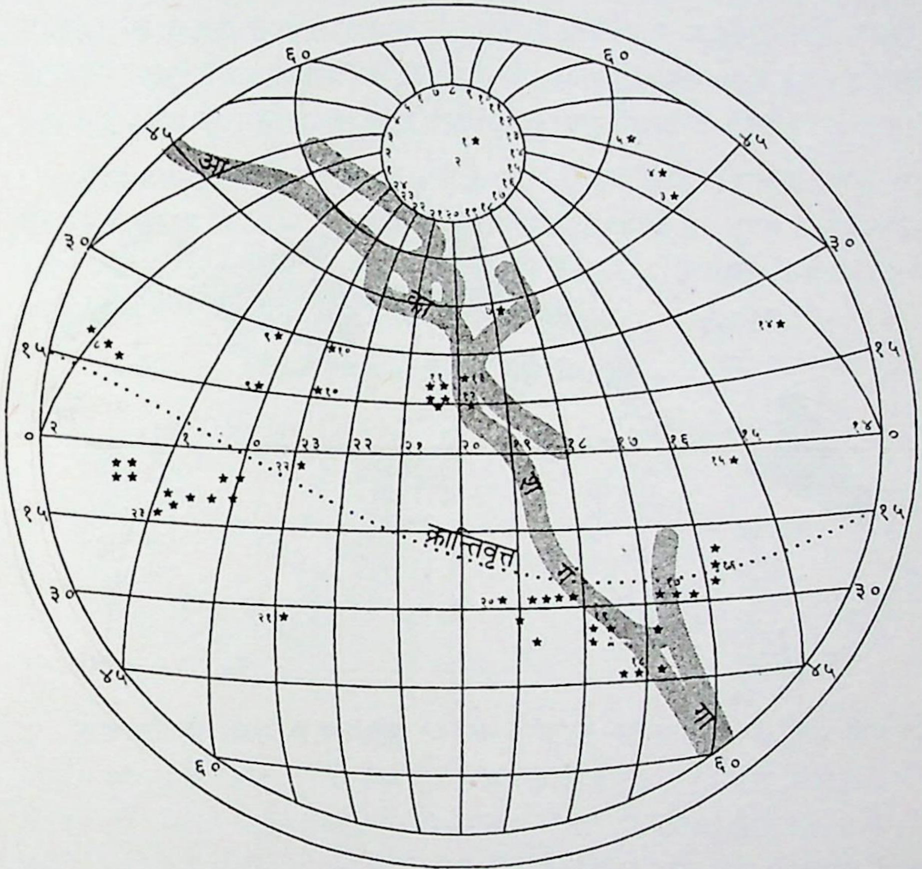
नक्षत्रनाम	संज्ञा	नक्षत्रनाम	संज्ञा
१. अश्विनी	सम	१५. स्वाति	जघन्य
२. भरणी	जघन्य	१६. विशाखा	बृहत्
३. कृत्तिका	सम	१७. अनुराधा	सम
४. रोहिणी	बृहत्	१८. ज्येष्ठा	जघन्य
५. मृगशिरा	सम	१९. मूल	सम
६. आर्द्रा	जघन्य	२०. पूर्वाषाढ़ा	सम
७. पुनर्वसु	बृहत्	२१. उत्तराषाढ़ा	सम
८. पुष्य	सम	+ अभिजित्	पृथक्
९. श्लेषा	जघन्य	२३. श्रवण	सम
१०. मघा	सम	२४. धनिष्ठा	सम
११. पूर्वफाल्गुनी	सम	२५. शतभिषा	जघन्य
१२. उत्तरफाल्गुनी	बृहत्	२६. पूर्वभाद्रपद	सम
१३. हस्त	सम	२७. उत्तरभाद्रपद	बृहत्
१४. चित्रा	सम	२८. रेवती	सम

फाल्गुन (कुम्भेऽर्क) मास का आकाशीय चित्र



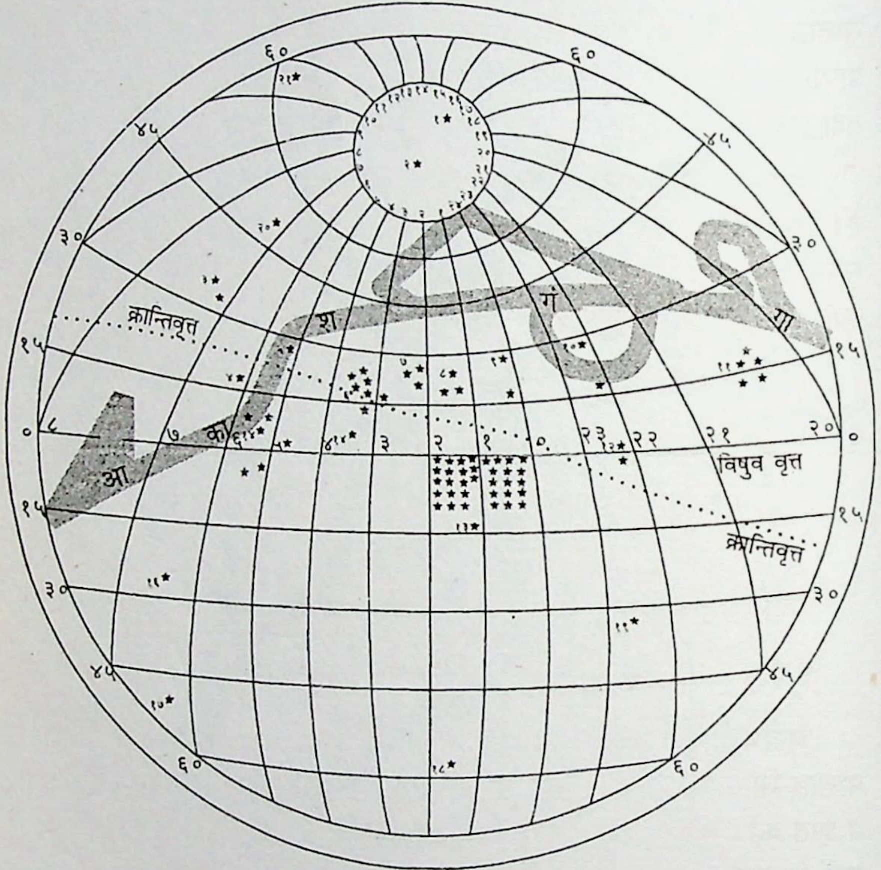
१. ध्रुव
२. ध्रुवमत्स्य
३. मरीचि
४. वसिष्ठ
५. अंगिरा
६. अत्रि
७. पुलस्त्य
८. पुलह
९. क्रतु
१०. प्रजापति
११. ब्रह्महृदय
१२. अश्विनी
१३. भरणी
१४. कृत्तिका
१५. रोहिणी
१६. मृगशीर्ष
१७. आर्द्रा
१८. पुनर्वसु
१९. पुष्य
२०. आश्लेषा
२१. मघा
२२. पूर्वा
२३. उत्तरा
२४. स्वाती
२५. अपांवत्स
२६. चित्रा
२७. हस्त
२८. व्याध
२९. अगस्त्य
३०. त्रिशंकु
३१. दक्षिणार्क्ष

भाद्रपद मास का आकाशीय चित्र



१. ध्रुव मत्स्य	७. भरणी	१२. शतभिषक्	१७. अगस्त्य
२. ध्रुव	८. अश्विनी	१३. रेवती	१८. यमुना
३. पुनर्वसु	९. उत्तरभाद्रपदा	१४. रोहिणी	१९. याम मत्स्य
४. आर्द्रा	१०. पूर्वभाद्रपदा	१५. मृगशीर्ष	२०. प्रजापति
५. अग्नि	११. धनिष्ठा	१६. व्याध	२१. क्रतु
६. कृत्तिका			

मार्गशीर्ष मास का आकाशीय चित्र



१. ध्रुव	७. अभिजित्	१३. स्वस्तिक	१९. पूर्वाषाढा
२. ध्रुव मत्स्य	८. अश्विनी	१४. स्वाती	२०. उत्तराषाढ़ा
३. मरीचि	९. उत्तरभाद्रपदा	१५. विशाखा	२१. याम मत्स्य
४. वशिष्ठ	१०. पूर्वभाद्रपदा	१६. अनुराधा	२२. शतभिषक्
५. अंगिरा	११. धनिष्ठा	१७. ज्येष्ठा	२३. रेवती
६. अत्रि	१२. श्रवण	१८. मूल	

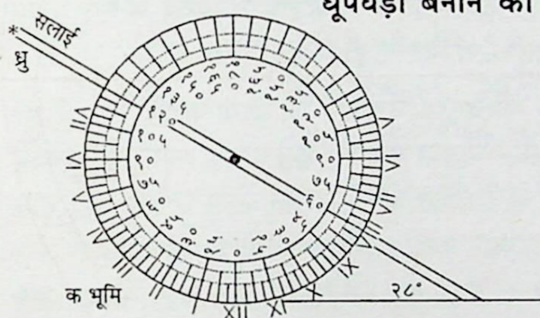
अनुष्टुब्जात्योदग्दिशमाह—

दिनमानदले सप्ताङ्गुलच्छायाग्रतो हि यत्।
शङ्कुमूले नीयमानं सूत्रं स्यादुत्तरा दिशा ॥१२॥

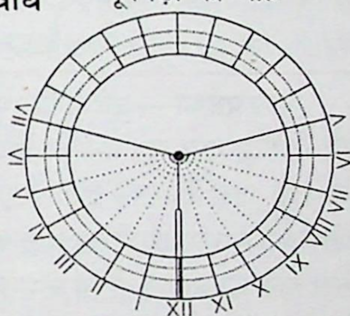
बलदाभाष्यम्—हीति निश्चयेन दिनमानस्य दिनस्य दलेऽर्धेऽर्थान्मध्याह्ने स्थापितस्य सप्ताङ्गुलस्य शङ्कोर्या छाया तदग्रतस्तस्या: छायाया अग्रबिन्दुत: शङ्कोर्मूले तले नीयमानं प्राप्यमानं यत्सूत्रं सैवोत्तरा दिशा स्यादेतदुक्तं भवति घटिकादियन्त्रेण मध्याह्नसमयं ज्ञात्वा तदा शङ्कुच्छायैव दक्षिणोत्तरा स्यादेवेत्यत्र शङ्कुमानकल्पनायां नियमो नास्तीति ज्ञेयम्।।१२।।

मण्डपप्रभा—अभीष्ट दिन को मध्याह्न काल में एक सात अङ्गुल का शङ्कु गाड़ दें। उसकी छाया जिधर को जाय वही दिशा उत्तर दिशा होती है। धूपघड़ी से मध्याह्न समय जानकर उत्तर दिशा का साधन करें अथवा यन्त्रघटी से मध्याह्न समय का ज्ञान स्थानिक सूर्योदय के ज्ञान के साथ कर लेना चाहिये।।१२।।

धूपघड़ी बनाने की विधि



धूपघड़ी का चक्र



यन्त्रघड़ी से स्थानीय मध्याह्न जानना—विद्वान् को चाहिये कि जिस दिन का मध्याह्न जानना हो, उस दिन का सूर्योदय समय भारतीय मानक समय के घण्टा-मिनटों में ज्ञात करें। फिर स्थानीय पञ्चाङ्ग में जो दिनमान लिखा हो, उसके घटी-पल जान लें। उन्हें आधा कर दें तो दिनार्ध का समय ज्ञात होगा। दिनार्ध के घटी-पलों के घण्टा-मिनट बना लें तथा उनको सूर्योदय के समय में जोड़ने से स्पष्ट मध्याह्न काल का मानक समय (I.S.T.) का ज्ञान हो जायेगा। मान लीजिये कि स्थानीय सूर्योदय साढ़े पाँच बजे हो तथा दिनमान चौंतीस घटी हो तो उसका आधा सत्रह घटी है, जिसके छ: घण्टे अड़तालीस मिनट हुए। इनको सूर्योदय के ५ घण्टा तथा ३० मिनट में दिनार्ध के छ: घण्टे अड़तालीस मिनट को जोड़ दिया तो १२ घण्टा तथा १८ मिनट हुआ; यह भारतीय मानक समय में स्पष्ट मध्याह्न काल का समय हुआ। इस तरह से यन्त्र-घड़ी से मध्याह्न जानना भी सरल है।

दिक्साधन की अनिवार्यता—स्तम्भरोपण, द्वारनिर्माण, गृहारम्भ, प्रासाद तथा यज्ञमण्डपादि में दिशा-ज्ञान आवश्यक है—

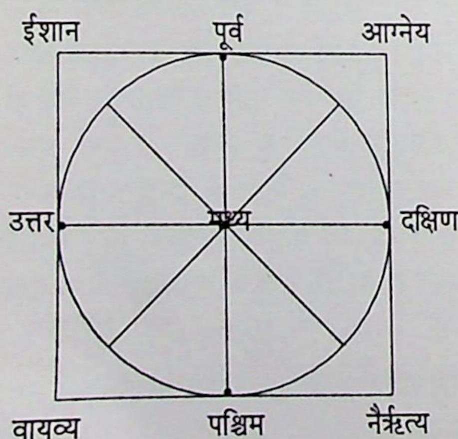
दिक्साधनं च कर्तव्यं शिलाद्वारावरोपणम्।
स्तम्भे च वास्तुविन्यासे तथा च गृहकर्मणि।।
प्रासादे वा तथा यज्ञे मण्डपे बलिकर्मसु।। (विश्वकर्मप्रकाश)

एवं दिक्साधनमभिधाय मण्डपस्य चतुष्कोणत्वात्तत्साधनं विपरीताख्यानक्याह—

दिगन्तशङ्कुद्वयगं द्विपाशं विस्तारतुल्यं तु गुणं दलाङ्कयम्।
कोणे प्रकर्षेदिति वेदकोणेष्वेवं चतुष्कोणमतीव साधु ।।१३।।

बलदाभाष्यम्—द्वौ पाशौ ग्रन्थिविशेषौ यस्मिन्तत्तथाभूतं तथा विस्तारः क्षेत्रस्य विस्तारो यथा षोडशहस्तमण्डपस्य षोडशैव विस्तारस्तत्तुल्यं दलाङ्कयमर्धभागाङ्कितं गुणं सुडोरकं विधायेति शेषः। तु पुनः दिशि तस्या अन्ते चरमदिशि च (अन्तो जघन्यं चरममित्यमरः) यथा पूर्वदिशोऽनुलोमगणनयोत्तरा चरमा विलोमगणनया दक्षिणैवमन्यत्रापि बोध्यम्। तत्र यच्छङ्कुद्वयं तद्गं पाशद्वयं कृत्वेति शेषः। पूर्वाङ्कितार्धचिह्नं धृत्वा कोणे साध्यकोणे प्रकर्षेदा-कर्षेत् यत्रार्धचिह्नं पतति तत्रैवं साध्यविदिक् इतीत्थं वेदकोणेषु चतुर्ष्वपि कोणेषु क्रिया कार्या। एवंकृतेऽतीव साधु स्फुटं चतुष्कोणं भवतीति।।१३।।

मण्डपप्रभा—अब मण्डपभूमि को चतुष्कोण बनाने की क्रिया बतायी जा रही है। पूर्व में शङ्कु द्वारा वृत्त बनाकर दिक्साधन बताया गया है। उस वृत्त के चारो दिग्विन्दुओं पर शङ्कु गाड़ दें। उन्हें इन्हीं दिगन्त में स्थापित कीलों से चतुष्कोण साधन करें। मान लीजिये कि आपको सोलह हाथ का मण्डप बनाना है तो सोलह हाथ की रस्सी लें और बीस हाथ का बनाना हो तो बीस हाथ की रस्सी लें। उसके दोनों ओर पाश (फन्दा) बना दें। फिर पूर्व तथा दक्षिण दिशा में उस सूत्र के दोनों पाशों को लगा दें तथा रस्सी को बीच से पकड़कर वृत्त के बाहर की ओर खींचने से अग्निकोण की स्थिति स्पष्ट हो जायेगी और वहाँ अग्निकोण की कील गाड़ दें। इसी प्रकार दक्षिण-पश्चिम दिशा की कीलों में रस्सी फँसाकर बाहर की ओर मध्य से आकर्षण करने से नैर्ऋत्य कोण स्पष्ट हो जायेगा। वहाँ कील गाड़ दें। पश्चिम तथा उत्तर के शङ्कुओं में रस्सी के फन्दे फँसाकर मध्य भाग से रस्सी खींचने पर वायव्य तथा उत्तर-पूर्व की कीलों में फन्दा फँसाकर मध्य से रज्वाकर्षण करने पर ईशान कोण की स्थिति स्पष्ट हो जायेगी। कोणों में भी एक-एक कील गाड़ते चलें तो मण्डप-भूमि वर्गाकार हो जायेगी। (स्पष्टता हेतु चित्र देखें)।।१३।।



परमदिनेन उदीचीसाधनम्—

परमदिनदिनोद्भवान्तरालं शरगुणितं च हृतं रसैर्द्युतिः स्यात्।
समकुगतनरे नगाङ्गुले त्विट् समगतया स्वभया भवेदुदीची ॥१४॥

मण्डपप्रभा—जिस दिन को दिक्साधन करना हो, उस दिन के दिनमान तथा उस स्थान के परमदिन (सर्वाधिक दिनमान) का अन्तर कर लें। उस अन्तर को पाँच से गुणा कर दें तथा रस (छः) से भाग दें तो मध्याह्न समय की छाया अङ्गुलों में प्राप्त हो जायेगी। इतनी छाया मध्याह्नकाल में सात अङ्गुल के शङ्कु द्वारा जिस दिशा में पड़े, वही उत्तर दिशा जाननी चाहिये।। १४।।

परम दिन—प्रत्येक स्थान पर वर्ष में एक दिन सर्वाधिक दिनमान होता है। यह दिनमान अक्षांश भेद से अलग-अलग स्थानों में अलग-अलग रहता है तथा विषुव दिन से तीन मास के अन्तर पर होता है।

विषुव दिन तो शरद तथा वसन्त ऋतुओं के मध्य में होता है। उस दिन दिन-रात्रि का मान तुल्य अर्थात् पन्द्रह मुहूर्त (तीस घटी) होता है। यथा—

दशपञ्चमुहूर्ताह्नो मुहूर्तस्त्रय एव च।
दशपञ्चमुहूर्त्तं वै अहस्तु विषुवे स्मृतम्।।
शरद्वसन्तयोर्मध्ये विषुवं तु विधीयते।।

वैदिक साहित्य में तैत्तिरीय ब्राह्मण तथा ऐतरेय ब्राह्मण में विषुव का उल्लेख इस प्रकार है—

'यथा वै पुरुष एवं विषुवांस्तस्य यथा दक्षिणोर्ध एवं पूर्वार्धो विषुवन्तो यथोत्तरार्धं एवमुत्तरार्धो विषुवन्तस्तस्मादुत्तर इत्याचक्षते प्रबाहुसक्तः शिर एव विषुवान्' (ऐ० ब्रा० १८.२२)। अयन के अर्धभाग में ही विषुव पड़ता है। ऋग्ज्योतिष में विषुव-तिथि का आनयन निम्न प्रकार से कहा है—

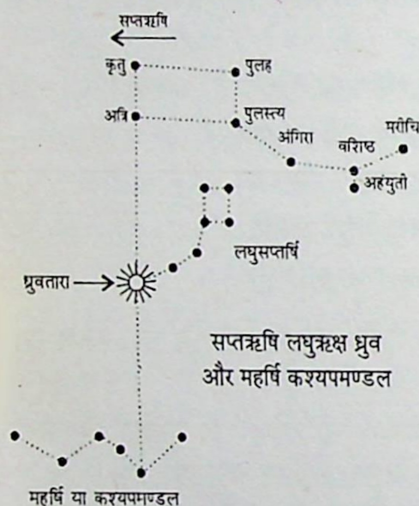
विषुवन्तं द्विरभ्यस्य रूपोनं षड्गुणीकृतम्।
पक्षा यदर्धं पक्षाणां तिथिस्स विषुवान्स्मृतः।।

उत्तरी गोलार्ध में परम दिन सायन उत्तरायण (मिथुन के सात अंश पर अर्थात् २१ जून को तथा दक्षिणी गोलार्ध में परम दिन (निरयण धनु के सात अंश) अर्थात् सायन मकर प्रवेश पर होता है; परन्तु इस दिन उत्तरी गोलार्ध में परम रात्रि होती है अर्थात् रात्रिमान सर्वाधिक होता है।

जिस स्थान पर दिक्साधन करना हो, वहाँ का स्थानीय पञ्चाङ्ग लें तथा उसमें उस दिन का दिनमान देख लें एवं वर्ष भर में जिस दिन सर्वाधिक दिनमान हो, उसे भी देख लें। वही परम दिन होता है।

उदाहरण—मान लीजिये कि उस दिन दिनमान २५ घटी तथा ३० पल है तथा उस स्थान का परम दिनमान ३४ घटी ३० पल है तो दोनों का अन्तर नौ घटी हुआ। इसे पाँच से गुणा किया तो ४५ गुणनफल हुआ, जिसमें छः का भाग देने पर लब्धि ७ अङ्गुल प्राप्त हुई। शेष ३ को ८ से गुणा कर गुणनफल २४ में पुनः छः का भाग देने पर ४ यव प्राप्त हुए। उस दिन मध्याह्न काल में अङ्गुलादि $\frac{७}{४}$ की छाया जिस दिशा में पड़े, वही उत्तर दिशा होगी। उसे चिह्नित कर उसके विपरीत दक्षिण दिशा जान लें तथा फिर तदनुसार पूर्व तथा पश्चिम का निर्णय भी कर लें।

ध्रुवतारा से उत्तर का ज्ञान—अन्य नक्षत्रों की अपेक्षा ध्रुवतारा की पहचान सरल एवं सुगम है। सबसे प्रथम सप्तर्षि के सात तारों को देखें। उनके ठीक विपरीत दिशा में महर्षिमण्डल या काश्यपमण्डल के छः तारे होते हैं, जिनका आकार अंग्रेजी वर्णमाला के (M) या (W) अक्षरों-जैसा होता है। इन दोनों तारासमूहों के मध्य में लघु सप्तर्षिमण्डल रहता है।



सप्तऋषि लघुऋक्ष ध्रुव और महर्षि कश्यपमण्डल

जब कभी सप्त-र्षिमण्डल उत्तरी क्षितिज में नीचे की ओर रहने से नहीं दिखता है तब उसके विपरीत दिशा में काश्यप मण्डल (Cassi-opea) को स्पष्ट देखा जा सकता है। इस काश्यप मण्डल तथा सप्त ऋषि मण्डल (Great bear) के मध्य ही ध्रुवतारा रहता है। सप्त ऋषि को अधिकांश लोग पहचानते ही हैं। यह सात तारों का समूह है, जिसमें चार के द्वारा एक खाट जैसा आकार बनता है। इस खाट के एक सिरे पर क्रतु तथा अत्रि नामक दो तारे हैं।

यदि इन दोनों तारों को मिलाकर उसी सीध में आगे को बढ़ती हुई एक रेखा खींची जाय तो वह लघु सप्तर्षि (Little bear) के समीप स्थित ध्रुवतारे से मिल जाती है। इस तारे का प्रकाश साधारण ही है। यह अधिक चमकीला नहीं होता। आप इस तारे का निरीक्षण करें तो देखेंगे कि सप्तर्षि, कश्यप तथा लघु सप्तर्षि उसी के आस-पास घूमते रहते हैं; परन्तु वह तारा स्थिर रहता है; अपितु अत्रि एवं क्रतु तारे उसी सीध में एक सरल रेखा में ही बने रहते हैं।

यही ध्रुवतारा की पहचान है। ध्रुवतारा सदैव उत्तर में रहता है। उसे देखकर पृथ्वी पर उत्तर को अंकित करें तथा तदनुसार मण्डप का निर्माण सही दिशा में कर लें।

मण्डपे विशेषं शालिन्याह—

उच्चां भूमिं मण्डपस्य प्रकुर्य्याद्धस्तोन्मानामर्धहस्तोन्मितां वा।
मध्ये भूमिं मण्डपेनोन्मितां च त्यक्त्वा कुर्य्यान्मण्डपश्चेद्द्वितीयः ॥१५॥

बलदाभाष्यम्—हस्तोन्मानां हस्तमितां वार्धहस्तोन्मितां द्वादशाङ्गुलपरिमितां मण्डपस्योच्चामुन्नतां भूमिं प्रकुर्यात्। तथोक्तं कपिलपाञ्चरात्रे—

उच्छ्रायो हस्तमानं स्यात्सुसमं च सुशोभनम्।। इति ।

सिद्धान्तशेखरे च—

स्थलादर्काङ्गुलोच्छ्रायं मण्डपस्थलमीरितम्।। इति ।

च पुनश्चेद्यदि द्वितीयोऽन्यो मण्डपोऽर्थात्प्रधानमण्डपापेक्षयाऽन्यो मण्डपश्चेत्कर्त्तव्यस्तदा मध्ये प्रधानकर्त्तव्यमण्डपयोर्मध्ये मण्डपेन प्रधानमण्डपेनोन्मितां तुल्यां भूमिं त्यक्त्वा मण्डपं कुर्यात्। तथोक्तं वास्तुशास्त्रे—

मण्डपान्तरमुत्सृज्य कर्त्तव्यं मण्डपान्तरम्। इति।।१५।।

मण्डपप्रभा—अब मण्डपभूमि की ऊँचाई तथा अन्य मण्डपों के अन्तर को बताया जा रहा है—

मण्डप की भूमि को सामान्य भूमि से एक हस्त या अर्धहस्त प्रमाण ऊँचा रखना चाहिये (क्योंकि मण्डप = यज्ञशाला को सामान्य भूमि से ऊँचा न रखने पर उसकी पवित्रता बाधित होगी)।

अब देवप्रतिष्ठा आदि कर्मों में यज्ञमण्डप के अतिरिक्त भी दूसरे मण्डप (अधिवासन-मण्डप, स्नानमण्डप आदि) भी बनाने की आवश्यकता होती है। उन मण्डपों को इतने अन्तर से बनायें कि वह अन्तर मण्डप की ऊँचाई से न्यून न हो अर्थात् यदि मण्डप की ऊँचाई पन्द्रह हाथ है तो न्यूनतम पन्द्रह हाथ के अन्तर से ही दूसरा मण्डप निर्मित करना चाहिये। क्योंकि वास्तुशास्त्र में कहा है—

मण्डपान्तरमुत्सृज्य कर्तव्यं मण्डपान्तरम्।

परन्तु यदि स्थान सङ्कीर्ण हो तब उस स्थिति में रुद्रयामल एक मण्डप के समीप ही दूसरा मण्डप बनाने को कहता है—

गृहे देवालये वापि सङ्कीर्णं यत्र दृश्यते।
तत्र कार्यं मण्डपज्ञैः संश्लिष्टं मण्डपद्वयम्।।

इस ग्रन्थ में मण्डप की दिशा का निर्देश नहीं है; परन्तु मदनरत्न में किस दिशा में कौन-सा मण्डप बनायें; इसका उल्लेख इस प्रकार है—

विप्राणां मण्डपः प्राच्यां राज्ञामीशानकोणतः।
विशामुदीच्यां शूद्राणां प्रतीच्यां शस्त ईरितः।।

वैष्णवो मण्डपः प्राच्यां ईशान्यां शैव ईरितः।
शाक्तः प्रतीच्यां कौबेर्यां इतरेषां सुपर्वणम्।।

महामण्डपतः प्राच्यां उदीच्यां स्नानमण्डपम्।
गजहस्तायतिं दीर्घं चतुरस्रं चतुर्दिशम्।।

इन मण्डपों की दिशा का निर्धारण महामण्डप से चारो ओर करना चाहिये। महामण्डप से इनकी ऊँचाई भी कम रखनी चाहिये। इन सहायक मण्डपों की ऊँचाई तो वितस्तिमात्र अर्थात् एक बित्ता भर ही पर्याप्त होती है। महामण्डप या प्रधान मण्डप यदि घर के समीप न बनाना हो तो उसे घर के पूर्व या उत्तर की ओर बनाना उचित है।

प्रधान मण्डप से अन्य मण्डपों की दिशा का चक्र

दिशायें	ईशान	पूर्व	आग्नेय	दक्षिण	नैर्ऋत्य	पश्चिम	वायव्य	उत्तर
मण्डप	राज-मण्डप	विप्रमण्डप	×	×	×	शूद्र-मण्डप	×	वैश्यमण्डप अग्निहोत्रियों का मण्डप
	शैव-मण्डप	वैष्णवमण्डप स्नानमण्डप	×	×	×	शाक्त-मण्डप	×	अन्य मण्डप स्नानमण्डप

मण्डपप्रमाणं वसन्ततिलकेनाह—

दशसूर्यकरोन्मितोऽधमः स्यादिनशक्रप्रमितैः करैस्तु मध्यः।
धृतिभूपकरोन्मितो वरीयान्नखहस्तोऽप्यथ मण्डपस्तुलायाम्॥१६॥

बलदाभाष्यम्—दश प्रसिद्धाः सूर्यो द्वादशैतन्मितो मण्डपोऽधमः स्यात्। तु पुनरिनो द्वादश शक्रश्चतुर्दशैतत्प्रमितैस्तुल्यैः करैर्हस्तैर्मध्यो नातिनिकृष्टो नाप्युत्तमः स्यात्। धृतिरष्टादशभूपाः षोडशैतत्करैरुन्मितस्तुल्यो मण्डपो वरीयानुत्तमः स्यात्। अथ नखहस्तो विंशतिहस्तमितो मण्डपोऽपि निश्चयेन तुलायां तुलादाने भवतीति। तथोक्तं लिङ्गपुराणे—

दश द्वादशहस्तौ च द्विद्विवृद्ध्या ततः क्रमात्।
विंशद्धस्तप्रमाणेन मण्डपं कूटमेव वा।
तथा द्वादशहस्तेन कलाहस्तेन वा पुनः।।

पाञ्चरात्रेऽपि—

कनीयान् दशहस्तः स्यान्मध्यमो द्वादशोन्मितः।
तथा षोडशभिर्हस्तैर्मण्डपः स्यादिहोत्तमः।।

ननु मण्डपेषु हस्तगत्या कथमुत्तमाधमतोक्तेत्याशङ्काम्परिहरन्नुच्यते लघुमण्डपे नवकुण्डीपक्षे पञ्चमेखलापक्षे चाचार्याद्युपवेशनं वास्तविकी कुण्डरचना च न सम्भवत्यत-

स्तत्राधमत्त्वमेवं यत्र सङ्कोचेन कुण्डरचना निवासश्च तेषां, तत्र मध्यमत्त्वं यत्र च सुखेन कुण्डरचना निवासश्च तत्रोत्तमत्त्वमुक्तमाचार्यैः। उत्तमोऽपि मण्डपो रत्न्यरत्न्यैकहस्तमितैकमेखलापक्ष एवादरणीयः। उत्तमेऽपि मण्डपे दशहस्तकुण्डस्य नवपञ्चमेखलापक्षस्य समावेशो न स्यादतो मण्डपस्य वृद्धिरुक्ता मन्त्रमुक्तावल्यां चतुर्विंशद्धस्तपर्यन्तं मण्डपस्य वृद्धिरिति। वास्तुशास्त्रेऽपि पञ्चहस्तमारभ्य द्वात्रिंशद्धस्तपर्यन्तं वृद्धिरुक्ता कर्मविशेषे ग्रन्थविस्तरभयात्र लिख्यत इति।।१६।।

मण्डपप्रभा—इस ग्रन्थकार के अनुसार दस या बारह हाथ का मण्डप अधम मण्डप कहलाता है। बारह-चौदह हाथ का मण्डप मध्यम कहलाता है। सोलह-अट्ठारह हाथों का मण्डप उत्तम होता है। यदि तुलादान करना हो तो बीस हाथ का मण्डप बनाना चाहिये। मण्डपों का क्षेत्रफल आवश्यकता एवं परिस्थिति के अनुसार निश्चित करें। पञ्चकुण्डी या नवकुण्डी में उनकी आवश्यकता के अनुसार मण्डप बनायें। शीतकाल में अपेक्षाकृत छोटे मण्डप में भी पञ्चकुण्डी या नवकुण्डी होम कर सकते हैं; परन्तु ग्रीष्मकाल में अग्नि का ताप असह्य हो जाता है; अतः मण्डप बड़ा ही होना चाहिये, जिससे ऋत्विजों को आस-पास के कुण्डों की उष्णता का त्रास न झेलना पड़े। परिस्थितियों की भिन्नता के कारण ही ग्रन्थों में मण्डपों के अल्प, मध्यम तथा उत्तमता के मानों में अन्तर है। मण्डपों को आवश्यकता पड़ने पर सौ हाथ का भी बनाया जा सकता है।

यदि कुण्डों में पाँच या नौ मेखलाएँ बनाई जाँय तो भी यज्ञमण्डप में अधिक अवकाश की आवश्यकता रहती है। विश्वकर्मप्रकाश में तो सत्ताईस मण्डपों के नाम उनकी माप के अनुसार ही दिये हैं—

विविधाः मण्डपाः कार्याः श्रेष्ठमध्यमकनीयसः।
नामस्तान् प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं द्विजसत्तमाः।।

पुष्पकः पुष्पभद्रस्तु सुवृत्तोऽमृतनन्दनः।
कौशल्यो बुद्धिसङ्कीर्णो गजभद्रो जयावहः।।

श्रीवृक्षो विजयश्चैव वास्तुकोऽर्णश्रुतन्धरः।
जयभद्रो विलासश्च संश्लिष्टः शत्रुमर्दनः।।

भाग्यपञ्चो नन्दनश्च भानवो मानभद्रकः।
सुग्रीवो हर्षणश्चैव कर्णिकारः पदाधिकः।।

सिंहश्च यामभद्रश्च शत्रुघ्नश्च तथैव च।
सप्तविंशतिराख्याता लक्षणं शृणुत द्विजाः।।

यहाँ इनकी स्तम्भसंख्या भी बताई गई है।।१६।।

द्वारमानं मध्यवेदीमानञ्चाख्यानक्याह—

दिगन्तराले द्विकरं भवेद् द्वाः चतुष्टयं वेदगजाङ्गुलैस्तत् ।
विवर्धितं मध्यवरिष्ठयोः स्याद्वेदी त्रिभागेन समाकरोच्चा ॥१७॥

बलदाभाष्यम्—दिशः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरास्तासामन्तराले मध्ये करयोर्द्वयमिति द्विकरं युग्महस्तमितमित्यर्थः। चतुष्टयं चतुःसंख्याकं द्वाः द्वारं भवेत्। तद्द्वारचतुष्टयं मध्य-वरिष्ठयोर्मध्यमोत्तमयोर्मण्डपयोः क्रमेण वेदाश्चत्वारो गजा अष्टौ तत्तुल्याङ्गुलैर्विवर्धितं स्यात्। तद्यथा कनिष्ठमण्डपे द्विहस्तं मध्यमे चतुरङ्गुलाधिकहस्तद्वयमुत्तमेऽष्टाङ्गुलाधिकहस्तद्वयमिति। त्रिभागेन मण्डपस्य तृतीयांशेन समार्थान्मण्डपे तुल्यनवकोष्ठं कृते मध्यकोष्ठसमानाकरोच्चैक-हस्तोच्छ्रिता वेदी मध्यवेदी कार्येति। तथोक्तं पाञ्चरात्रे—

कनिष्ठे द्विकरं द्वारं चतुरङ्गुलवृद्धितः।
मध्मोत्तमयोर्वेदी मण्डपस्य त्रिभागतः।। इति ।

क्रियासारेऽपि—

त्रिभागं मण्डपं कृत्वा मध्यभागे तु वेदिका।
हस्तमात्रं तदुत्सेधं चतुरस्रं समन्ततः।। इति ।

सिद्धान्तशेखरे तु विशेषः—

वेदी चतुर्विधा प्रोक्ता चतुरस्रा च पद्मिनी।
श्रीधरी सर्वतोभद्रा दीक्षासु स्थापनादिषु।।

चतुरस्रा चतुष्कोणा वेदी सर्वफलप्रदा।
तडागादिप्रतिष्ठायां पद्मिनी पद्मसन्निभा।।

राज्ञां स्यात्सर्वतोभद्रा चतुर्भद्राऽभिषेचने।
विवाहे श्रीधरी वेदी विंशत्यस्रसमन्विता।
दर्पणोदरसङ्काशा निम्नोन्नतविवर्जिता।। इति ।।१७।।

मण्डपप्रभा—अब इस श्लोक में मण्डपद्वार तथा मध्यवेदी का कथन करते हैं—

किसी भी प्रकार का मण्डप हो; उसके दिगन्तराल (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम तथा उत्तर) में चार द्वारों का निर्माण करना चाहिये। इन द्वारों की चौड़ाई दो हाथ होती है। मध्यम मण्डप में इसे चार अङ्गुल तथा उत्तम मण्डप में आठ अङ्गुल बढ़ा देना चाहिये। तात्पर्य यह है कि अधम मण्डप में दो हाथ का चौड़ा द्वार, मध्यम मण्डप में दो हाथ चार अङ्गुल का चौखटयुक्त द्वार तथा उत्तम मण्डप में दो हाथ आठ अङ्गुल का द्वार होना अभीष्ट है। द्वार की ऊँचाई तो मण्डप के उच्छ्राय के तुल्य ही होती है; क्योंकि मण्डप के बाह्य स्तम्भ पञ्चहस्तप्रमाण के होते हैं तथा एक हाथ भूमि में गड़े रहते हैं।

वेदी-निर्माण—मण्डप को पूर्व से पश्चिम तथा उत्तर से दक्षिण तीन-तीन भागों

में विभाजित करें तो उनके खड़े और तिरछे कटने से कुल नौ खण्ड निर्मित हो जाते हैं। उनमें से मध्य भाग को वेदी कहा जाता है। मध्य में वेदी की ऊँचाई एक हाथ प्रमाण की होनी चाहिये। इस प्रधान वेदी को त्रिवप्रा चतुष्कोण बनाना चाहिये। यज्ञ भगवान् मध्य में विराजित होकर आहुति ग्रहण करते हैं; अतः मध्य खण्ड में वेदी बनाने का प्रावधान अनेक आचार्यों ने किया है; परन्तु मध्य में कुण्ड भी बना सकते हैं तथा प्रधान वेदी ईशान कोण में बनाई जा सकती है अथवा शान्तिमयूख के अनुसार पूर्व में बनानी चाहिये। शारदातिलक के अनुसार वेदी मध्य भाग में ही उचित है। वेदी में तीन वप्र बनाना चाहिये।

ततो मण्डपसूत्रन्तु त्रिगुणीकृत्य तत्त्ववित्।
पूर्वादिषु क्रमात्तस्य मध्यभागे तु वेदिका।।

यदि मध्य भाग में कुण्ड बनावें तो प्रधान वेदी पूर्व में बनावें—

मध्ये तु मण्डपस्यापि कुण्डं कुर्याद् विचक्षणः।
अष्टहस्तप्रमाणेन आयामेन तथैव च।।

कुण्डस्य पूर्वस्य वेदी कुर्याद् विचक्षणः।
चतुर्हस्तां समाञ्चैव हस्तमात्रोच्छ्रितां नृप।।

वेदी के प्रकार—सिद्धान्तशेखर में चार प्रकार की वेदियों का उल्लेख है—

वेदी चतुर्विधा प्रोक्ता चतुरस्रा तु पद्मिनी।
श्रीधरी सर्वतोभद्रा दीक्षासु स्थापनादिषु।।

चतुरस्रा चतुष्कोणा वेदी सर्वफलप्रदा।
तडागादिप्रतिष्ठायां पद्मिनी पद्मसन्निभा।।

राज्ञां स्यात् सर्वतो भद्रा चतुर्भद्राऽभिषेचने।
विवाहे श्रीधरी वेदी विंशत्यस्रसमन्विता।।

दर्पणोदरसंकाशा निम्नोन्नतविवर्जिता।।

अर्थात् वेदी चार प्रकार की होती है—

१. चतुरस्रा वेदी—यह वर्गाकार होती है। यह सभी के लिये शुभ फलदायक होती है।

२. पद्मिनी वेदी—यह कमल के आकार की होती है। इस पद्मिनी वेदी का उपयोग वापी, कूप, तडागादि की प्रतिष्ठा में होता है।

३. श्रीधरी वेदी—यह बीस कोणों वाली होती है। इसका निर्माण विवाह-कार्य में करना चाहिये। इसका उदर दर्पण की भाँति निर्मल, चमकदार तथा सपाट होना चाहिये।

४. सर्वतोभद्र वेदी—इसमें चारो दिशाओं में चार भद्र होते हैं, जिसका उपयोग अभिषेक में करना चाहिये। सर्वतोभद्र का निर्माण तो अधिसंख्य मङ्गल कार्यों में होता है।

अष्टकोण वेदी—श्री राघवभट्ट ने अष्टकोण वेदी का विधान शतचण्डी, सहस्रचण्डी आदि शक्तियागों में किया है—

'मध्यस्तम्भचतुष्कमध्यसमं चतुरस्रं कृत्वा षोडशहस्ते मण्डपेऽष्टादशाङ्गुलाधिक हस्तेन विंशतिहस्ते चतुर्विंशत्यङ्गुलाधिकहस्तेन कोणेषूभयतोऽङ्कयित्वाष्टसूत्रदानादष्टास्रम्' अर्थात् मण्डप के मध्य भाग में चारो स्तम्भों के मध्य एक वर्गाकार वेदी बनायें। यदि मण्डप सोलह हाथ का हो तो वेदी एक हाथ तथा अट्ठारह अङ्गुल (पौने दो हाथ×पौने दो हाथ) की बनावें। यदि मण्डप बीस हाथ प्रमाण वाला हो तो वेदी एक हाथ तथा चौबीस अङ्गुल अर्थात् दो हाथ (२×२ हाथ) की बनावें। चतुरस्र वेदी के दोनों ओर के कोणों को अङ्कित करते हुए सूत्र देने पर अष्टास्र अर्थात् अष्टकोण हो जाती है।।१७।।

तुलापुरुषदाने विशेषं विपरीताख्यानक्याह—

तुलाप्रदानेऽधममध्ययोः स्यात्सा पञ्चहस्तोत्तमकेऽद्रिहस्ता।
ईशानभागे ग्रहवेदिका तु हस्तोन्मितोच्छ्रायवती त्रिवप्रा ॥१८॥

बलदाभाष्यम्—तुलाप्रदाने तुलापुरुषदानेऽधममध्यमयोर्मण्डपयो: सा मध्यवेदी पञ्च-हस्ता पञ्चहस्तपरिमिता उत्तमके उत्तमे मण्डपेऽद्रिहस्ता सप्तहस्तमिता स्यात्। तथोक्तं मात्स्ये—

पञ्चहस्ता भवेद्वेदी सप्तहस्ताथवा भवेत्।

तु पुनरीशानभागे मण्डपस्येशाणकोणे हस्तोन्मितोच्छ्रायवती हस्तैकमितायामदैर्ध्यो-च्छ्राययुता तथा त्रीणि वप्राणि प्राकाराणि सोपानानीति यावत्। यस्यां सा तथाभूता ग्रहार्थं वेदिका स्यादिति।।१८।।

मण्डपप्रभा—तुलादान में मध्यवेदी की विशेषता—धर्मशास्त्र में तुलादान की विशेष महिमा है। अस्तु; प्राचीन काल में राजा-महाराजा, श्रेष्ठिवर्ग तथा सम्पन्न जन शास्त्रोक्त विधि से तुलादान का कार्यक्रम सम्पन्न करते थे, जिसमें मण्डप का निर्माण होता था। आज उसकी शास्त्रोक्त विधि से सम्पन्नता विरल है। तुलादान का मण्डप कैसा हो, यह विशेष बात श्लोक के पूर्वार्ध में कही गयी है—

जिस मण्डप का निर्माण तुलादान हेतु किया गया हो, उसमें मध्यवेदी यदि अधम या मध्यम मण्डप हो तो पाँच हाथ लम्बी तथा पाँच हाथ चौड़ी होनी चाहिये। यदि उत्तम मण्डप हो तो वेदी सात हाथ लम्बी तथा सात हाथ चौड़ी चाहिये। वेदी का उच्छ्राय सभी प्रकार के मण्डपों में एक हाथ होना चाहिये।

ग्रहवेदी—सभी प्रकार के मण्डपों एवं कार्यों में ग्रहवेदी (नवग्रह वेदी) का निर्माण ईशान कोण में होना अपेक्षित है, जो एक हाथ ऊँची, एक हाथ लम्बी तथा एक हाथ

चौड़ी हो अर्थात् वह एक घन हस्त होना चाहिये। साथ ही उसमें तीन वप्र भी हों अर्थात् तीन सीढ़ियाँ या मेखला लगी हों। इसीलिये उसे त्रिवप्रा कहा गया है ।

महारुद्रयागादि में ईशान कोण में ही प्रधान वेदी का निर्माण करते हैं; क्योंकि रुद्र की दिशा ईशान है; परन्तु नवग्रह वेदी उसके दक्षिण में होनी चाहिये। कहा भी है—

अथ प्रधानादपि यत्र पूर्वं ग्रहाधिवासश्च तथा प्रधानम्।
ईशानदेशे च ततस्त्ववाच्यां श्रीखेटवेदिः करविस्तृतोच्चा।।

वप्रप्रमाण—वेदी के वप्रों का प्रमाण इस प्रकार होना चाहिये—प्रथम वप्र दो अङ्गुल ऊँचा, जिसके ऊपर तीन अङ्गुल ऊँचा दूसरा वप्र हो, फिर उसके ऊपर भी तीन अङ्गुल का वप्र हो। वप्र की चौड़ाई दो अङ्गुल होती है—

द्विरङ्गुलोच्छ्रितो वप्रः प्रथमो समुदाहृतः।
त्र्यङ्गुलोच्छ्रायसंयुक्तः वप्रद्वयमथोपरि।।
द्व्यङ्गुलस्तत्र विस्तारः सर्वेषां कथितो बुधैः।।

अन्य वेदियाँ—यज्ञों में अन्य वेदियों का भी निर्माण होता है, जिनकी दिशाएँ इस प्रकार हैं—

आग्नेय्यां मातृकावेदी वास्तुवेदी तु नैर्ऋते।
वायव्यां क्षेत्रपालयोगिन्यौ ईशान्ये तु नवग्रहाः।।

विकल्प से कुछ विद्वान् अग्निकोण में ही मातृकावेदी के साथ ही योगिनी वेदी भी बना देते हैं। उनके अनुसार 'आग्नेय्यां योगिनी वेदी' होती है। अग्निकोण में ही सप्त-घृतमातृका की स्थापना भी हो जाती है, जिसे एक काष्ठ के पट्टे पर कर देते हैं। मातृका वेदी का अग्निकोण में होना मन्थानभैरव ग्रन्थ के प्रमाणानुसार है। उसी के अनुसार शेष वेदियों को एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा तथा आधा हाथ ऊँचा बनाना चाहिये—

शेषवेद्यां ततः ख्यातं हस्तमेकं तु विस्तरे।
उच्छ्रायार्काङ्गुलः प्रोक्तः स्नानवेदी द्विहस्तका।।

देवप्रतिष्ठा में देवों के स्नान (स्नपन) के लिये जो वेदी बनाई जाय, वह दो हाथ लम्बी तथा दो हाथ चौड़ी होनी चाहिये।।१८।।

स्तम्भनिवेशनं भुजङ्गप्रयातशालिनीभ्यामाह—

समत्रित्रिभागे च सूत्रं प्रदद्यादुग्दक्षिणं चापि पूर्वापरञ्च।
तत्रत्र्यंशपूर्त्तौ च कोणेषु दद्यात्समस्तम्भकान्द्वादशैवेषु हस्तान्॥१९॥
वेद्याः कोणे हस्तिहस्तोच्चवेदस्तम्भान्वह्निदिक्तः सचूडान्।
प्रादक्षिण्यात्पञ्चमांशं तु भूमौ दद्यादेवं षोडशस्तम्भसंस्थाः॥२०॥

बलदाभाष्यम्—चात्पुनः समेषु तुल्येषु त्रिषु त्रिषु भागेष्वर्थान्मण्डपस्य विस्तारे त्रिधा विभक्ते प्रतिभागेष्वित्यर्थः। उदग्दक्षिणमुत्तरचिह्नमारभ्य दक्षिणचिह्नपर्यन्तमेवं पूर्वापरं पूर्वचिह्नमारभ्य पश्चिमचिह्नपर्यन्तमपि प्रकर्षेण स्फुटरूपेण सूत्रं दद्यात्। एवं कृते नवकोष्ठात्मको मण्डपो भवति। ततस्तदनन्तरम्। त्र्यंशस्य त्रिभागस्य यत्र पूर्तिः समाप्तिः सा च प्रतिदिशं द्विसंख्यकैवं चतुर्दिक्ष्वष्टौ त्र्यंशपूर्त्तयस्तास्वष्टौ स्तम्भाः। चात्पुनः कोणेषु चतुर्षु चत्वारस्तम्भा एवमिषुहस्तान्पञ्चहस्तपरिमितान्द्वादश समस्तम्भकान्तुल्यपरिमाणकान् दद्यादारोपयेत्। अपि च सचूडान् सशिखान् हस्तिभिरष्टभिर्हस्तैरुच्चांस्तथावेदस्तम्भान् चतुरः स्तम्भान् वह्निदिक्तोऽग्निकोणात् प्रादक्षिण्यात्प्रदक्षिणक्रमेण वेद्या मध्यवेद्याः कोणे दद्यादारोपयेत्। तेषामुक्तस्तम्भानां पञ्चमांशस्तु भूमौ निखनेदिति शेषः। एवं षोडशानां स्तम्भानां संस्था संस्थापनं स्यादिति। तथोक्तं शारदातिलके—

षोडशस्तम्भसंयुक्तं चत्वारस्तेषु मध्यमाः।
अष्टहस्तसमुच्छ्राया.................................।। इति।

पाञ्चरात्रेऽपि—

मण्डपार्धोच्छ्रितान्वेदसंख्यांश्चूडासमन्वितान् ।
स्तम्भान्समं च संस्थाप्य स्तम्भद्वादशकं पुनः।। इति।

यद्यप्यत्र मण्डपार्धोच्छ्रितानित्युक्तं तथापि षोडशहस्तमण्डपस्य मुख्यत्त्वादष्टहस्तोच्छ्रिता एव स्तम्भा मुख्यत्वेनाचार्यैः स्वीकृता इति।।१९-२०।।

मण्डपप्रभा—मण्डपभूमि के सम त्रिभाग—मण्डप के उत्तर-दक्षिण तथा पूर्व-पश्चिम में तीन-तीन सूत्र देकर समान विभाग के वर्गाकार नौ खण्ड बना लेना चाहिये। इसके लिये मण्डप की एक भुजा के माप का सूत्र लें तथा उसे तिहरा करने पर एक खण्ड की माप होगी। उससे ईशान कोण से लेकर तीन बार नाप कर अग्नि कोण तक पहुँचें। अग्नि कोण से नैर्ऋत्य कोण तक तीन सूत्र होंगे। वायव्य कोण से ईशान कोण तक तीन सूत्र होंगे। इस प्रकार नाप लें। जैसे भी बनायें, यज्ञशाला की भूमि के नौ बड़े समान वर्गाकार बना लें। जहाँ पर उन खण्डों के कोण पड़ते हों, वहाँ पर स्तम्भ गाड़ दें। इस प्रकार चार स्तम्भ मध्य में तथा शेष बारह स्तम्भ बाहर की ओर गाड़े जायेंगे। यदि मण्डप पन्द्रह हाथ का होगा तो स्तम्भों की परस्पर दूरी पाँच-पाँच हाथ पर रहेगी। अट्ठारह हाथ के मण्डप में स्तम्भों की परस्पर दूसरी छः-छः हाथ तथा २१ हाथ के मण्डप में सात-सात हाथ रहेगी।

ईशान	पूर्व	आग्नेय
उत्तर	मध्य	दक्षिण
वायव्य	पश्चिम	नैर्ऋत्य

स्तम्भनिवेशन—मध्य वेदी के चारो कोणों पर चार स्तम्भ आठ हाथ परिमाण का

गाड़ना चाहिये। स्तम्भों की ऊँचाई का पञ्चमांश अर्थात् ⅙ भाग (एक हाथ तथा चौदह अङ्गुल) भूमि में गाड़ दें तथा स्तम्भों के ऊपर चूड़ा निकाल दें। ये चार स्तम्भ अन्तः-स्तम्भ कहलाते हैं।

बाह्य स्तम्भ—बाहर की ओर गाड़े जाने वाले बारह स्तम्भ पाँच हाथ प्रमाण के हों तथा उनका भी पञ्चमांश (एक हाथ) भूमि में निविष्ट करना चाहिये; जैसा कि वास्तुशास्त्र में कहा है—

पञ्चमांशो खनेद् भूमौ सर्वसाधारणो विधिः।

स्तम्भनिवेशन का प्रारम्भ—अब प्रश्न उठता है कि प्रथम स्तम्भ किस दिशा से गाड़ना प्रारम्भ किया जाय? इस पर शारदातिलक में बताया है—

स्तम्भोच्छ्राये शिलान्यासे सूत्रयोजनकीलके।
खननावटसंस्कारे प्रारम्भो वह्निगोचरे।।

अर्थात् स्तम्भों का गाड़ना, शिलान्यास, सूत्रयोजना, कीलनिवेशन (शङ्कुनिवेशन), खननकार्य आदि का प्रारम्भ अग्नि कोण से प्रदक्षिणक्रम से करें। अर्थात् प्रथम अग्नि कोण से प्रारम्भ करें; फिर नैर्ऋत्य कोण तक जायें, फिर वायव्य तक तथा अन्त में ईशान होते हुए पुनः अग्नि तक प्रदक्षिणा पूरी करें। इसी को प्रदक्षिणक्रम कहते हैं। बाहर के द्वादश स्तम्भ तथा भीतर के चार स्तम्भ इसी क्रम से गाड़ना चाहिये। प्रथम बार में बाहर के स्तम्भ गाड़ें; फिर उनके गाड़े जा चुकने पर भीतरी चार स्तम्भों को गाड़ना चाहिये। भीतर के चार स्तम्भों में चूड़ा होनी आवश्यक है; क्योंकि उनमें वलिकाओं के छिद्र स्थापित किये जाते हैं।।१९-२०।।

स्तम्भोपरि काष्ठनिवेशनमिन्द्रवज्रयाह—

स्तम्भेषु तिर्यग्वलिका निधेयाश्चूडासु कर्णेष्वथवा बहिस्ताः।
पूर्वापरं दक्षिणसौम्यदिक्स्थं कोणेऽन्तरा काष्ठचयं निदध्यात्॥२१॥

बलदाभाष्यम्—स्तम्भेषु चतुर्षु चतुर्वेदिस्तम्भेषु द्वादशसु मण्डपस्तम्भेषु च चूडासु शिखासु अथवा कर्णेषु श्रवणेषु बहिरेव बहिस्ताः किञ्चिद्बहिर्गताः तिर्यक् तिरश्चीनं यथा स्यात्तथा वलिकाः स्तम्भोपरि तीर्यग्निहितकाष्ठस्य वलिकेति संज्ञा निधेयाः स्थाप्याः। तद्वलिकाकाष्ठं पूर्वापरं द्वयं दक्षिणसौम्यदिक्स्थं च द्वयमेवं चतुष्टयं स्यात्। कोणेऽग्निवाय्वोः निर्ऋतीशानयोश्चान्तरान्यत्काष्ठचयं काष्ठसमूहं मण्डपं यथादृढं स्यात्तथा निदध्यात्स्थापयेत्।।२१।।

मण्डपप्रभा—अब स्तम्भों के ऊपर वलिकाएँ (वल्लियाँ) किस प्रकार लगायी जाँय; यह बताया जा रहा है—

सर्वप्रथम मध्य वेदी के चारो कोणों में जो चार बड़े स्तम्भ हैं, उनके चूड़ा के ऊपर

दोनों पार्श्वों में छिद्रयुक्त वलिकाकाष्ठ लगायें। ये चार वलिका दोनों ओर छिद्र वाली होनी चाहिये; जिनके छिद्रों में चूड़ास्तम्भ प्रविष्ट किये जा सकें। फिर इसी भाँति द्वादश बाह्य स्तम्भों के दोनों ओर बारह वलिकाकाष्ठ लगायें। इस प्रकार कुल सोलह वलिकाकाष्ठ लग चुके होंगे और चार भीतरी स्तम्भ आपस में संयुक्त हो चुके होंगे; शेष द्वादश स्तम्भ भी परस्पर संयुक्त दिखेंगे। इसमें सोलह वलिका लग चुकी होंगी।

अब भीतर तथा बाहर के स्तम्भों को भी परस्पर संयुक्त करना है। अतः दो-दो वलिकायें प्रत्येक दिशा से मध्य के बाह्य स्तम्भों से लेकर भीतरी स्तम्भ तक संयोजित करें तथा कोणों वाले स्तम्भों से भी भीतर के स्तम्भों को संयोजित करें तब बारह वलिकायें और लग चुकेंगी। इस प्रकार वलिकाकाष्ठों की संख्या १६+१२ = २८ हो जायेगी। कोने वाली चार वलिकायें बड़ी होती हैं, जिन्हें 'कर्ण' कहते हैं। अब चार बड़ी वलिकायें लेकर भीतर के चार बड़े स्तम्भों के ऊपर से मध्य वेदी के मध्य भाग में ऊँचाई पर शिखर बनाने के लिये लगानी चाहिये। इस प्रकार कुल बत्तीस वलिकाकाष्ठों का संयोजन स्तम्भों के ऊपर करते हैं। कुछ विद्वान् वलिकाओं की संख्या छत्तीस कहते हैं। तात्पर्य यह है कि जितनी वलिकाओं एवं अन्य काष्ठों से मण्डप सुदृढ़ हो जाय, उतनी संख्या में काष्ठों का प्रयोग करना चाहिये। कुण्डार्क ग्रन्थ में बड़ी स्पष्टता के साथ वलिका-निवेशन निर्दिष्ट किया गया है।

बड़े मण्डपों में स्तम्भों तथा वलिकाओं की संख्या—यहाँ पर सोलह स्तम्भ के मण्डप के लिये वलिकाओं की संख्या निर्धारित की गयी है। जहाँ और बड़े विशाल मण्डप बनते हैं, वहाँ स्तम्भों की अधिकता के साथ वलिकायें भी अधिक लगती हैं। अट्ठाईस हाथ के मण्डप में भूमि के पाँच विभाग होते हैं। अतः ५×५ कुल २५ खण्ड बनते हैं, जिनमें छत्तीस स्तम्भ लगते हैं तथा बहत्तर वलिकायें लगती हैं। इससे अधिक बड़े मण्डप में जो कि पचहत्तर हाथ तक हो सकता है, उसमें सात विभाग होने से ७×७ = ४९ विभाग हो जाते हैं तथा उनमें एक सौ अट्ठाईस वलिकायें संयोजित की जाती हैं एवं स्तम्भों की संख्या चौंसठ होती है। पचहत्तर हाथ से अधिक बड़े मण्डप में दश विभाग होते हैं; अतः १०×१० = १०० खण्ड बनते हैं तथा ११×११ = १२१ स्तम्भ लगते हैं, जिसमें दो सौ चालीस वलिकायें लगती हैं। इस विषय को कुण्ड-रत्नावली में विस्तार से कहा गया है।

यज्ञीय वृक्ष—स्तम्भ-निर्माणादि में यज्ञीय वृक्षों का ही प्रयोग समीचीन होता है; जिसमें बाँस, सुपारी आदि का प्रयोग के साथ-साथ अन्य विशुद्ध वृक्षों का भी उपयोग कर सकते हैं—

पलाशफल्गुन्यग्रोधाः प्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः।
उदुम्बरास्तथा बिल्वो चन्दनो यज्ञियाश्च ये।।

अर्थात् पलाश, फल्गु (अञ्जीर), वट, पाकर, पीपल, विकङ्कत, ऊमर, बिल्व तथा चन्दन—ये यज्ञीय वृक्ष होते हैं।

त्याज्य काष्ठ—जो घर में लगकर टूट गया हो, अपने-आप सूख गया हो, टेढ़ा, पुराना तथा अपवित्र स्थान पर उत्पन्न हो; वह स्तम्भकर्म में त्याज्य है—

गृहशल्यः स्वयंशुष्कः कुटिलश्च पुरातनः।
असौम्यभूमिजनितः सन्त्याज्यः स्तम्भकर्मणि।।

क्रियासार के अनुसार इनका उपयोग नहीं करना चाहिये ।।२१।।

मध्यभागाच्छादनं रथोद्धतयाह—

मध्यभागशिखरं रचयित्वा छादयेदपि कटैर्ऋजुवंशैः ।
द्वारवर्जमिह मण्डपमेनं स्तम्भकानपि सुवस्त्रसमूहैः ।।२२।।

बलदाभाष्यम्—मध्यभागे मण्डपस्य मध्ये शिखरं शृङ्गम् (कूटोऽस्त्री शिखरं शृङ्ग-मित्यमरः)। रचयित्वा कृत्वा कटैः ऋजुवंशैः सरलवंशैरपीहात्र द्वारवर्जं द्वाररहितमित्य-नेनाभितोऽपि छादनं सूचितं, येन शूद्रादिदृष्टिदूषितं कर्म न भवेत्, छादयेत्। सुवस्त्रसमूहैः वस्त्राद्यलङ्कारकवस्तुजातैः स्तम्भकानपि छादयेदलङ्कुर्यादित्यर्थः। तथाह क्रियासारे—

नारिकेलदलैर्वापि पल्लवैर्वापि वेणुभिः।
आच्छाद्या मण्डपाः सर्वे द्वारवर्जन्तु सर्वतः।। इति ।

वास्तुशास्त्रे—

कटैः सद्भिस्तु सञ्छाद्या विजयाद्यास्तु मण्डपाः।। इति ।

हयग्रीवपञ्चरात्रे—

दर्पणैश्चामरैर्घण्टैः स्तम्भान्वस्त्रैर्विभूषयेत्। इति ।।२२।।

मण्डपप्रभा—मण्डप के ऊपरी भाग के मध्य में शिखर का निर्माण करें तथा उसे बाँस एवं कट (कड़वी, सरपत, कुश आदि) से आच्छादित करें, केवल चारो द्वारों को आच्छादित न करें। इस मण्डप एवं स्तम्भों को वस्त्रों से भी वेष्टित करें। वर्तमान में रंगीन कागज का भी उपयोग मण्डप की साज-सज्जा में कर लेना चाहिये। नारियल के पत्तों, कदलीस्तम्भों तथा पञ्चपल्लवादि से भी मण्डप को विभूषित करना चाहिये। हयग्रीव-पाञ्चरात्र के अनुसार मण्डप में दर्पण, चामर, घट आदि की योजना भी करनी चाहिये—

दर्पणैश्चामरैर्घटैः स्तम्भान्वस्त्रैर्विभूषयेत्।

दर्पण एवं चामर शोभावृद्धि के लिये तथा घट मङ्गलकरण के लिये होते हैं।।२२।।

विशेष—मण्डप की शोभा के लिये देवताओं के चित्रों को मण्डप में लगाया जा सकता है; परन्तु राजनेताओं (आधुनिक समय के) के चित्र नहीं लगाये जा सकते।

अवतारों एवं प्राचीन महापुरुषों एवं सन्तों के चित्र (जिनकी यज्ञादि सनातन धर्म की क्रियाओं में आस्था रही हो) भी लगाए जा सकते हैं ।

वसन्ततिलकया तोरणान्याह—

पूर्वादिदिक्षु रचयेदपि तोरणानि न्यग्रोधजन्तुफलपिप्पलवृक्षराजैः ।
अश्वत्थजन्तुफलपर्कटिभूरिपद्भिर्वेषामभावत इमान्यथवैककेन ॥२३॥

बलदाभाष्यम्—पूर्वादिदिक्षु पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरेषु क्रमेण न्यग्रोधो वटः जन्तुफलमौदुम्बरः पिप्पलः प्रसिद्धः वृक्षराजः प्लक्ष एभिर्वाऽश्वत्थः पिप्पलः (बोधिद्रुमश्चलदलः पिप्पलः कुञ्जराशनः। अश्वत्थ इत्यमरः)। जन्तुफलमौदुम्बरः (उदुम्बरो जन्तुफलमित्यमरः)। पर्कटिः (प्लक्षो जटि पर्कटिः स्यादित्यमरः)। भूरिपाद्वटः (न्यग्रोधो बहुपाद्वट इत्यमरः। एभिस्तोरणानि द्वारविशेषाण्यपि निश्चयेन रचयेत्। तथोक्तं महाकपिलपाञ्चरात्रे—

देवास्तोरणरूपेण संस्थिता यज्ञमण्डपे।
विघ्नविध्वंशनार्थाय रक्षार्थमध्वरस्य च।।

न्यसेन्न्यग्रोधमैन्द्र्यान्तु याम्यां चौदुम्बरं तथा।
वारुण्यां पिप्पलं चैव कौवेर्यां प्लक्षजं न्यसेत्।।

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षवटशाखाकृतानि च।
मण्डपस्य प्रतिदिशं द्वाराण्येतानि कारयेत्।।

अथवैषामुक्तकाष्ठानामभावतोऽलाभात्तदेकतमेनेमानि तोरणानि रचयेत्। तथोक्तं पाञ्चरात्रे—

अलाभेष्वेकमेवैषां सर्वाशासु निवेशयेत्। इति ।।२३।।

मण्डपप्रभा—मण्डप के चारो दिशाओं में पूर्वादि क्रम से चार द्वारों के बाहर तोरणों का निर्माण करना चाहिये। इन तोरणों का निर्माण द्वार से बाहर की ओर हटकर एक हाथ के अन्तराल से करना चाहिये। तोरण बाहरी द्वार होता है। इन तोरणों में प्रत्येक दिशा में पृथक्-पृथक् वृक्ष के काष्ठ का उपयोग होता है। पूर्व दिशा में वट अथवा विकल्प से पीपल, दक्षिण में जन्तुफल (ऊमर), पश्चिम में पीपल अथवा पाकर, उत्तर दिशा में प्लक्ष अथवा वट वृक्ष के काष्ठ का प्रयोग करना चाहिये। यदि इन सब वृक्षों का काष्ठ प्राप्त न हो तो इनमें से जो भी मिल जाय, उस एक ही वृक्ष के काष्ठ का प्रयोग करना चाहिये। इन तोरणों में पृथक्-पृथक् काष्ठ क्यों लगाया जाता है इस सम्बन्ध में महाकपिलपाञ्चरात्र का कथन इस प्रकार है—

देवास्तोरणरूपेण संस्थिता यज्ञमण्डपे।
विघ्नविध्वंसनार्थाय रक्षार्थमध्वरस्य च।।

न्यसेन्न्यग्रोधमैन्द्र्यां तु याम्यां चौदुम्बरं तथा।
वारुण्यां पिप्पलञ्चैव कौबेर्यां प्लक्षजं न्यसेत्।।

अर्थात् देवता तोरण के रूप में यज्ञमण्डप के बाहर संस्थित होकर विघ्नों का विनाश तथा यज्ञ की रक्षा करते हैं; अतः पूर्वादि दिशाओं में न्यग्रोधादि का प्रयोग किया जाता है। तोरण की लकड़ी टेढ़ी-मेढ़ी नहीं होनी चाहिये।।२३।।

तोरणमानं तन्निवेशनं च विपरीताख्यानक्याह—

हस्ताद्बहिर्मण्डपतः शराङ्गस्वरैः करैस्तान्यधमादिकेषु।
दीर्घाणि च प्राहुरथायतिः स्यात्तेषां द्विहस्ता चरणप्रवृद्ध्या ॥२४॥

बलदाभाष्यम्—मण्डपतो मण्डपद्वारतो हस्तादेकहस्ताद्बहिरन्तरे चात्पुनः अधमादिकेषु अधममध्यमोत्तमेषु मण्डपेषु क्रमेण शराः पञ्च ५ अङ्गानि षट् ६ स्वराः सप्त ७ एतन्मितैः करैर्हस्तैर्दीर्घाणि प्राहुराचार्या इति शेषः। तथा चाग्नेये—

पञ्चषट्सप्तहस्तानि हस्तखाते स्थितानि च। इति।

अथ चरणश्चतुर्थांशोऽनुक्तत्वादेकहस्तचतुर्थांशः षडङ्गुलं तस्य प्रवृद्ध्या द्विहस्ता हस्तद्वये तेषां तोरणानामायतिर्विस्तारः स्यात्। एतदुक्तं भवति अधममण्डपे हस्तद्वयं मध्यमे षडङ्गुलाधिकं हस्तद्वयमुत्तमे सार्धहस्तद्वयमिति। तथोक्तं वास्तुशास्त्रे—

पञ्चहस्तप्रमाणास्ते विस्तारेण द्विहस्तकाः।
षडङ्गुलाभिवृद्ध्या च सप्तहस्तास्तथोत्तमः।। इति।।२४।।

मण्डपप्रभा—अब तोरण की माप बतायी जा रही है—मण्डपद्वार से बाहर एक हाथ की दूरी पर यदि अधम मण्डप हो तो पाँच हाथ ऊँचा, मध्यम मण्डप हो तो छः हाथ तथा उत्तम मण्डप में सात हाथ का ऊँचा मण्डप बनायें। इनकी चौड़ाई अधम मण्डप में दो हाथ, मध्यम मण्डप में दो हाथ तथा छः अङ्गुल अर्थात् सवा दो हाथ तथा उत्तम मण्डप में ढाई हाथ (दो हाथ १२ अङ्गुल) रखनी चाहिये। प्रत्येक तोरण में तीन काष्ठ लगते हैं। पार्श्वों में दो स्तम्भ तथा ऊपर एक वलिका लगती है। इन स्तम्भों की मोटाई द्वारों की भाँति दस अङ्गुल की होनी अपेक्षित है। इन तोरणस्तम्भों को भी पञ्चमांश भूमि में गाड़ना चाहिये।।२४।।

फलकादिनिवेशनमुपजातीन्द्रवज्राभ्यामाह—

स्तम्भार्धमानं फलकन्तु तीर्यङ्निवेशविश्वप्रमिताङ्गुलाश्च।
तन्मूर्ध्नि कीलाःस्वतुरीयभागैस्ततास्तु शूलाकृतयश्च ते स्युः ॥२५॥

तद्वेशनं द्वित्रियुगाङ्गुलानि शैवे तु विष्णोर्यजनेऽङ्गुलर्द्धिः।
कीलेषु शङ्खारिगदाम्बुजाङ्केष्विष्वंशरोपः किलतोरणेषु ॥२६॥

बलदाभाष्यम्—तु पुनः स्तम्भस्य तोरणस्तम्भस्यार्धेन मीयते तोल्यत इति स्तम्भार्धतुल्यमित्यर्थः। फलकं स्तम्भोपरि तीर्यङ्निहितकाष्ठस्य फलकमिति संज्ञा, तीर्यक् तिरश्चीनतया, निवेश्यमिति शेषः। तथोक्तं शारदातिलके—

तीर्यक् फलकमानं स्यात्स्तम्भानामर्धमानतः।। इति ।।

चात्पुनस्तस्य फलकस्य मूर्ध्नि शिरस्यधमादिमण्डपक्रमेण नव प्रसिद्धाः ईशा एकादश विश्वस्त्रयोदशैतत्प्रमिताङ्गुला दीर्घास्तथा स्वस्य दैर्घ्यस्य तुरीयभागैश्चतुर्थांशैस्तता विस्तृताः (विसृतं विस्तृतं ततमित्यमरः)। कीलका निवेश्या इत्यध्याहारः। तु पुनस्ते कीलकाः शूलाकृतयः सूच्यग्राकृतयः स्युरिति। तथोक्तं मन्त्रमुक्तावल्याम्—

अग्रयोर्मध्यभागे च पट्टिकायां त्रिशूलकम्। इति ।

पिङ्गलामते—

शूलेन चिह्निताः कार्या द्वारशाखास्तु मस्तके।
शूले नवाङ्गुले दैर्घ्ये तुरीयांशेन विस्तृतिः।।

ऋजु वै मध्यशृङ्गं स्यात्किञ्चिद्वक्रं तु पक्षयोः।
प्रथमं तत्समाख्यातं द्व्यङ्गुलं रोपयेत्तथा।।

शेषाणां द्व्यङ्गुला वृद्धिर्वंशश्चाङ्गुलवृद्धितः।। इति ।।

शैवे यजने यज्ञे मण्डपक्रमेण द्वित्रियुगाङ्गुलानि प्रसिद्धानि तस्य कीलकस्य वेशनं फलके प्रवेशनं निखननमिति यावत्स्यात्। तु पुनः विष्णोर्यजने यागे शैवोक्तकीलकायामदैर्घ्यप्रवेशनेष्वङ्गुलर्द्धिरङ्गुलवृद्धिः कार्येति शेषः। एतत्सर्वं चक्रेऽवलोक्यम्। पूर्वत इत्यध्याहारः शङ्खः प्रसिद्धोऽरिश्चक्रम् गदादण्डविशेषोऽम्बुजं कमलमेभिरङ्केष्वचिह्नितेषु चिह्नितेष्विति यावत् कीलेश्वर्थात्कीलोपलक्षितेषु तोरणेषु किल निश्चयेन, वास्तुशास्त्रे—

मस्तके द्वादशांशेन शङ्खं चक्रं गदाम्बुजम्।
प्रागादिक्रमयोगेन न्यसेत्तेषां स्वदारुजम्।। इति ।

इष्वंशस्तोरणस्य पञ्चमांशोरोपोभूमौ निखननं स्यात्।
पञ्चमांशं न्यसेद्भूमौ सर्वसाधारणो विधिः।। इति ।।२५-२६।।

मण्डपप्रभा—तोरणस्तम्भों को पाटने वाली चौड़ी काठ की पटिया (तख्ता) फलक कहलाता है। इसी को पटना या पाटना भी कहते हैं। फलक की लम्बाई तोरणस्तम्भ की ऊँचाई से आधी हो अर्थात् यदि तोरण पाँच हाथ का ऊँचा है तो ढाई हाथ का फलक होना चाहिये। यदि छः हाथ हो तो फलक तीन हाथ लम्बा होगा। उस फलक में दोनों ओर छिद्र बनवाना चाहिये तथा छिद्रों में तोरण-स्तम्भों के चूड़ों को प्रविष्ट कर देना चाहिये। फलकों के मध्य भाग में ऊपर की ओर छोटे छेद में काष्ठनिर्मित कील लगा देनी चाहिये; जिस पर वैष्णव याग में शंखादि लगा दिये जाते हैं तथा शैवयाग में कील के स्थान पर काष्ठनिर्मित त्रिशूल लगाए जाते हैं। उन कीलों का चतुर्थांश फलक में गाड़ना चाहिये।

शैवयाग में त्रिशूलों का रोपण—भगवान् शङ्कर, श्री गणेश जी एवं शक्ति (देवी) से सम्बन्धित यज्ञों में त्रिशूल लगाए जाते हैं। पिङ्गलामत ग्रन्थ में इस सम्बन्ध में निम्न निर्देश प्राप्त है—

शूलेन चिह्निता कार्या द्वारशाखास्तु मस्तके।
शूले नवाङ्गुलैर्दैर्घ्यं तुरीयांशेन विस्तृतिः।।

ऋजुर्वै मध्यशृङ्गं स्यात् किञ्चिद् वक्रं तु पक्षयोः।
प्रथमं तत्समाख्यातं द्व्यङ्गुलं रोपयेत्तथा।।

शेषाणां द्व्यङ्गुला वृद्धिर्वेशश्चाङ्गुलवृद्धितः।।

अर्थात् अधम मण्डप में शूल नौ अङ्गुल लम्बा तथा उसका चतुर्थांश (सवा दो अङ्गुल) चौड़ा हो उसका दो अङ्गुल भाग फलक में गाड़ना चाहिये। यदि मध्यम मण्डप हो तो शूल की लम्बाई दो अङ्गुल बढ़कर ग्यारह अङ्गुल हो जाती है तथा चौड़ाई पौने तीन अङ्गुल (दो अङ्गुल छः यव) हो जाती है। उसे एक अङ्गुल बढ़ाकर अर्थात् तीन अङ्गुल भाग फलक में गाड़ना चाहिये। उत्तम तोरण में त्रिशूल दो अङ्गुल और लम्बा होकर तेरह अङ्गुल का हो जाता है तथा सवा तीन अङ्गुल (तीन अङ्गुल दो यव) उसकी चौड़ाई होती है एवं उसका चार अङ्गुल भाग फलक में प्रविष्ट रहता है।

वैष्णव याग में शङ्खादि का रोपण—वैष्णव याग; जो कि श्रीविष्णु, श्रीराम आदि से सम्बन्धित रहते हैं; उनमें पूर्व द्वार के तोरण पर शङ्ख, दक्षिणी तोरण पर चक्र, पश्चिमी तोरण पर गदा तथा उत्तरी तोरण पर पद्म लगाते हैं; जैसा कि वास्तुशास्त्र में कहा भी है—

मस्तके द्वादशांशेन शङ्खं चक्रं गदाम्बुजम्।
प्रागादिक्रमयोगेन न्यसेत्तेषां स्वदारुजम्।।

उन कीलों की मान-वृद्धि विष्णुयाग में एक-एक अङ्गुल होती है अर्थात् अधम मण्डप में दशाङ्गुल, मध्यम में द्वादशाङ्गुल तथा उत्तम मण्डप में चौदह अङ्गुल होती है। उनकी चौड़ाई क्रमशः सवा तीन, पौने चार तथा सवा चार होती है। साथ ही फलक में प्रविष्टि क्रमशः तीन, चार तथा पाँच अङ्गुल होती है। जैसा कि कुण्डार्क में कहा भी गया है—

तन्मध्ये विष्णुयागे दशरविमनुभिश्चाङ्गुलैः स्वांघ्रिपुष्टम्।

स्तम्भों के मूल में दो-दो कलशों की स्थापना करना भी अभीष्ट है। आगे कीलों के प्रमाण को चक्र द्वारा समझाया गया है—

कीलक-प्रमाण चक्र

शैवयाग में						विष्णुयाग में						यागमण्डप
लम्बाई		चौड़ाई		फलकप्रवेश		लम्बाई		चौड़ाई		फलकप्रवेश		
अङ्गुल	यव	अङ्गुल	यव	अङ्गुल	यव	अङ्गुल	यव	अङ्गुल	यव	अङ्गुल	यव	प्रमाण
९	०	२	२	२	०	१०	०	३	२	३	०	अधममण्डप
११	०	२	६	३	०	१२	०	३	६	४	०	मध्यममण्डप
१३	०	३	२	४	०	१४	०	४	२	५	०	उत्तममण्डप

ध्वजनिर्माणं विपरीताख्यानक्याह—

ध्वजान् द्विहस्तायतिकांश्च पञ्च हस्तान्सुपीतारुणकृष्णनीलान् ।
श्वेतासितश्वेतसितान् दिगीशवाहान् वहेद्दिक्करवंशशीर्षे ॥२७॥

बलदाभाष्यम्—आयतिरेवायतिकः द्वौ हस्तावायतिकौ येषां तानर्थाद्धस्तद्वयविस्तृतान्। चात्पुनः पञ्चहस्तान् पञ्चहस्तदीर्घान् सुपीतः पीतोऽरुणो रक्तः कृष्णः प्रसिद्धो नीलश्वेतावपि प्रसिद्धौ असितः कृष्णः श्वेतसितौ प्रसिद्धावेभिर्वर्णैरुपलक्षितान्। तथा दिगीशानामष्टानां ये वाहा वाहनानि मातङ्गाजमहिषसिंहमत्स्यैणवाजिवृषभाद्येषु तानर्थात्स्वस्ववाहाङ्कितान् ध्वजान्। तथोक्तं प्रतिष्ठासारसंग्रहे—

मातङ्गवस्तु महिषसिंहमत्स्यैणवाजिनः।
वृषभं च यथान्यायं ध्वजमध्ये क्रमाल्लिखेत्।। इति ।

दिग्भिः करैस्तुल्यो यो वंशस्तस्य शीर्षे मस्तके वहेत्स्थापयेदिति।।२७।।

मण्डपप्रभा—अब मण्डप के सब ओर लगाये जाने वाले ध्वजाओं के मान, रंग तथा प्रतीकों को बताया जा रहा है।

ध्वजा—इनकी लम्बाई पाँच हाथ तथा चौड़ाई दो हाथ होनी चाहिये। इनके रंग पीत, अरुण (रक्त), कृष्ण, नील, श्वेत, असित (धूम), श्वेत, सित—ये पूर्वादि दिशाओं के दिक्पालों के अनुसार हों तथा इनको दश हाथ लम्बे बाँस पर लगाना चाहिये।

१. पूर्व में पीले रङ्ग की ध्वजा इन्द्र के लिये, २. अग्नि कोण में अरुण वर्ण की ध्वजा अग्नि के लिये, ३. दक्षिण में कृष्ण वर्ण की ध्वजा यम के लिये, ४. नैर्ऋत्य में निर्ऋति के लिये नील वर्ण ध्वजा, ५. पश्चिम में वरुण के लिये श्वेत वर्ण की ध्वजा, ६. वायव्य में वायु के लिये असित (धूम्र वर्ण) ध्वजा, ७. उत्तर में सोम के लिये श्वेत ध्वजा तथा ८. ईशान में शिव के लिये श्वेत ध्वजा लगानी चाहिये। इस प्रकार इस ग्रन्थ में आठ ध्वजाओं के रोपण का निर्देश है; परन्तु बहुत से विद्वान् अष्ट दिक्पाल के स्थान पर दश दिक्पाल की मान्यता के अनुसार ९. ऊर्ध्व के स्वामी ब्रह्मा जी के लिये ईशान तथा पूर्व के मध्य में श्वेत ध्वजा तथा १०. अधः के दिक्पाल अनन्त (विष्णु) के लिये भी श्वेत वर्ण की ध्वजा नैर्ऋत्य एवं पश्चिम के मध्य में स्थापित करते हैं। इस प्रकार से ध्वजाओं की संख्या दश हो जाती है। इन ध्वजाओं पर इन दिक्पालों के वाहनों के चित्र भी बनाकर लगाये जाते हैं; जैसा कि प्रतिष्ठासारसंग्रह में कहा है—

मातङ्गवत्समहिष-सिंह-मत्स्यैण-वाजिनः ।
वृषभं हंसगरुडौ ध्वजमध्ये क्रमाल्लिखेत्।।

अर्थात् उक्त दिशाओं में ध्वजाओं पर क्रमेण १. हाथी, २. बकरा, ३. महिष, ४. सिंह, ५. मत्स्य या मकर, ६. हिरण, ७. अश्व, ८. वृषभ, ९. हंस तथा १०. गरुड़ के चित्र बनाने चाहिये।

विकल्प से नवीं तथा दशवीं ध्वजा का वर्ण क्रमशः रक्त एवं श्वेत भी रखते हैं। वस्त्रादि की न्यूनता होने पर ध्वजा-प्रमाण एक हाथ लम्बाई तथा आधा हाथ चौड़ाई का भी रख सकते हैं—

सर्वेऽथवा बाहुमिता ध्वजाः स्युः सूर्याङ्गुलैरायतिका दशैव।
पक्षे यदा दिक्प्रमितास्तदा तु रन्ध्रस्तु रक्तो दशमो सितश्च।।

पाञ्चरात्र के अनुसार ध्वजारोपण अवश्य ही करना चाहिये। यथा—

ध्वजेन रहिते ब्रह्मन् मण्डपे तु वृथा भवेत्।
पूजा होमादिकं सर्वं जपाद्यं यत्कृतं बुधैः।।

अर्थात् ध्वजारहित मण्डप में जो कुछ भी पूजा, होम, जप आदि किया जाता है, वह सब व्यर्थ हो जाता है।।२७।।

शिव ८	ब्रह्मा ९	इन्द्र १	अग्नि २
सोम ७ (कुबेर)	दश दिक्पाल		यम ३
वायु ६	वरुण ५	अनन्त (विष्णु) १०	निर्ऋति ४

ध्वजपताकानिवेशनमिन्द्रवज्रानुष्टुब्भ्यामाह—

लोकेशवर्णास्त्रयुताः पताकाः शैलेन्दुदैर्घ्यायतिकाश्च मध्ये।
चित्रं ध्वजं दिक्करदैर्घ्यवंशे त्रिदोस्ततं प्रान्तगकिङ्किणीकम्॥२८॥

श्वेतां च नवमीं पूर्वेशानयोर्मध्यतो बुधः।
विन्यसेत्तु पताकांश्च ध्वजांस्तानपि पूर्वतः॥२९॥

बलदाभाष्यम्—लोकेशानां दिगीशानां ये वर्णाः प्रागुक्ताः सुपीतादयो यानि चास्त्राण्यायुधानि वज्रशक्तिदण्डखड्गपाशाङ्कुशगदात्रिशूलानि ताभ्यां युताश्चिह्नितास्तथा शैलाः सप्तेन्दुरेकः एतत्प्रमितैर्हस्तैर्दैर्घ्यायतिकौ दैर्घ्यविस्तारौ यासां ता अर्थात्सप्तहस्तदैर्घ्याः हस्तैकविस्तृताः पताकाः। दशहस्तवंशशीर्षगाः कार्या इति पूर्वश्लोकेनाध्याहारः। चात्पुनर्मध्ये मण्डपस्य मध्येऽर्थाच्छिखरे प्रान्तगकिङ्किणीकमुपान्तभागे स्यूतकिङ्किणीकं त्रिभिर्दोर्भिर्हस्तैस्ततं विस्तृतमनुक्तत्वादेतावदेव दैर्घ्यं चित्रमनेकवर्णदुकूलनिर्मितं ध्वजं दिक्करदैर्घ्यवंशे दशहस्तवंशशीर्षे कार्यम्। च पुनः बुधस्तान् ध्वजान् पताकांश्चापि पूर्वतो विन्यसेत् स्थापयेदिति।।२८-२९।।

मण्डपप्रभा—ध्वजा-निवेशन के पश्चात् पताका-निवेशन भी करना चाहिये। पताकायें भी लोकेशों (दिक्पालों) के वर्णों के अनुसार हों, जिनकी दीर्घता सात हाथ तथा आयति

(चौड़ाई) एक हाथ होनी चाहिये उन पताकाओं में लोकेशों के आयुधों के चित्र बनाना चाहिये तथा उन्हें दिक्कर (दश हाथ) लम्बे बाँस के शीर्ष पर लगाकर उन बाँसों का पञ्चमांश भूमि में गाड़ देना चाहिये। दश हाथ का पञ्चमांश ($\frac{१०}{५}$) = दो हाथ होता है।

लोकेशों के आयुध—अब लोकेशों के आयुध क्या हैं, जिनके चित्र पताकाओं पर अङ्कित किये जायँ ? इस सम्बन्ध में निम्न प्रमाण उपलब्ध होते हैं—

स्यादिन्द्रो करिवाहनः कुलिशभृत्प्राच्यां पिशङ्गद्युतिः,
त्वाग्नेय्यामजवाहनोऽजरुचिः शक्त्या युतो हव्यवाट्।
याम्यां दण्डकरो यमश्च महिषारूढोऽञ्जनाभस्तथा,
नैर्ऋत्यां करवालभृन्निर्ऋतिजः सिंहाधिरूढोऽसितः।।

वारुण्यां झषगो हिमद्युतिरपां नाथश्च पाशान्वितो,
वायव्यां मृगवाहनोऽङ्कुशकरो वायुः शुकाभः स्मृतः।
कौबेर्य्यां नरवाहनो दिशि गदापाणिर्विचित्रस्तदा,
रौद्र्यां सद् वृषवाहनो शशिनिभो स्याच्छङ्करः शूलभृत्।।

हंसस्थोऽरुणकः कमण्डलुकरः शक्रेशयोरन्तरा-
ऽनन्तोऽपांपतिरक्षसोर्घननिभस्ताक्ष्यीधिरूढोऽरिभृत् ।

अर्थात्— १. पूर्व दिशा में ऐरावतारूढ इन्द्र कुलिश (वज्र) धारण करते हैं, वे पिशङ्ग वर्ण हैं। २. अग्निकोण में अग्नि अजवाहनयुक्त तथा शक्ति से युक्त रहते हैं। ३. दक्षिण में यमराज महिष पर आरूढ़ होकर दण्ड धारण करते हैं । ४. नैर्ऋत्य में निर्ऋति सिंहारूढ़ होकर करवाल (तलवार) धारण करते हैं। ५. पश्चिम में मकर या मीन पर आरूढ़ वरुण पाशधारी हैं। ६. वायव्य में वायुदेव मृगारूढ़ होकर हाथ में अङ्कुश धारण करते हैं। ७. उत्तर में नरवाहन (कुबेर) अश्वयुक्त तथा गदा धारण करते हैं। ८. ईशान में भगवान् शिव वृषारूढ़ होकर त्रिशूल धारण करते हैं। ९. ब्रह्मा जी ईशान तथा पूर्व के मध्य में हंस पर आरूढ़ तथा हाथ में कमण्डलु धारण करते हैं। १०. अनन्तदेव पश्चिम तथा नैर्ऋत्य के मध्य गरुड़ासीन एवं चक्रायुधधारी होकर स्थित रहते हैं।

महाध्वज— इन सबके अतिरिक्त एक महाध्वज भी लगायें, जिसके अग्र भाग पर किङ्किणी, चँवर आदि सुशोभित होने चाहिये। यह महाध्वज बत्तीस हाथ के बाँस पर लगायें। असमर्थता में इसे दस हाथ या सोलह हाथ या इक्कीस हाथ के बाँस पर प्रयोग करें। इस महाध्वज को विचित्र वर्ण (पञ्चवर्ण) रखें तथा उस पर उस देवता के वाहन का चित्र बनायें, जिसके निमित्त वह यज्ञ किया गया हो।

ध्वजा एवं पताकाओं को निम्नलिखित चक्र के अनुसार ही लगाना चाहिये—

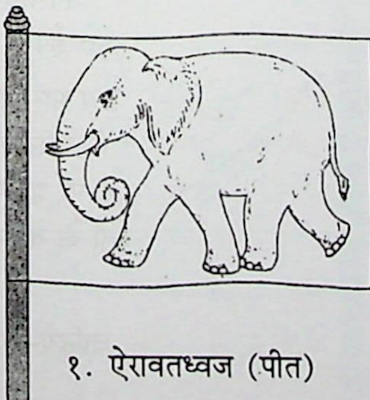
ध्वजा एवं पताका के स्थापन की दिशाओं का चक्र

स्थान	ध्वज-स्थिति	पताका-स्थिति
१. पूर्वी द्वार	इन्द्र ऐरावत ध्वज उत्तरी शाखा में	वज्र पताका दक्षिणी शाखा में
२. अग्नि कोण	पूर्व की ओर अग्नि का उपध्वज	दक्षिण की ओर शक्तिपताका
३. दक्षिणी द्वार	पूर्व शाखा में यम का महिषध्वज	पश्चिमी शाखा में दण्डपताका
४. नैर्ऋत्यकोण	दक्षिण की ओर सिंहध्वज	उत्तर की ओर खड्गपताका
५. पश्चिम द्वार	दक्षिण में वरुण का मकरध्वज	उत्तरी शाखा में पाशपताका अथवा मीनध्वज
६. वायव्य कोण	पश्चिम की ओर मृगध्वज	उत्तर की ओर अंकुशपताका
७. उत्तरी द्वार	पश्चिमी शाखा में अश्वध्वज	पूर्वी शाखा में गदापताका
८. ईशान कोण	उत्तरी ओर वृषध्वज	पूर्व में त्रिशूलपताका
९. पूर्व+ईशान के मध्य	उत्तर में ब्रह्मा का हंसध्वज	दक्षिण की ओर कमण्डलुपताका
१०. नैर्ऋत्य + पश्चिम के मध्य	दक्षिण की ओर गरुड़ध्वज	उत्तर की ओर चक्रपताका

ध्वजा एवं पताका का आकार—कहीं ध्वजा चौकोर तथा पताका त्रिकोण बनाते हैं तथा अनेक विद्वान् ध्वजा को त्रिकोण तथा पताका को चतुष्कोण बनाते हैं। अतः इनके आकार स्थानीय परम्परानुसार बना सकते हैं। इसमें कोई हानि नहीं है।

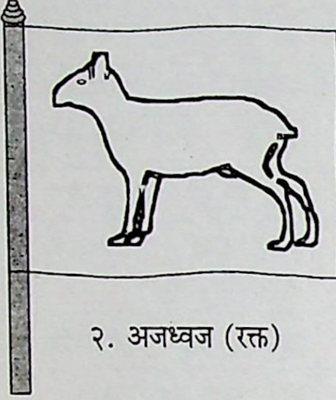
ध्वजा एवं पताकायें

हस्ती = श्वेतवर्ण
वज्र = रक्तवर्ण

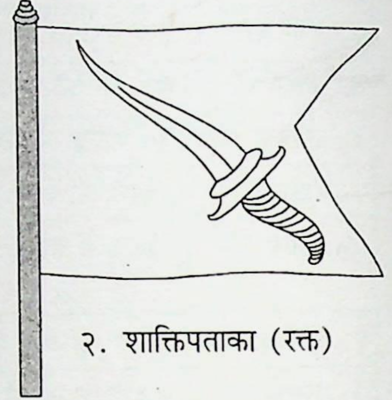

१. ऐरावतध्वज (पीत)


२. वज्रपताका (पीत)

अज = श्वेतवर्ण
शक्ति = कृष्णवर्ण

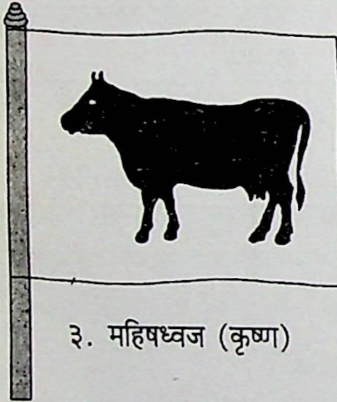


२. अजध्वज (रक्त)

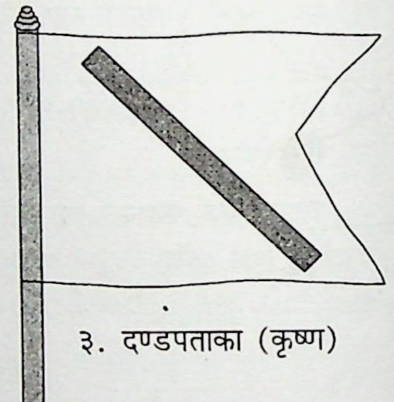


२. शाक्तिपताका (रक्त)

महिष = रक्त
दण्ड = रक्तवर्ण

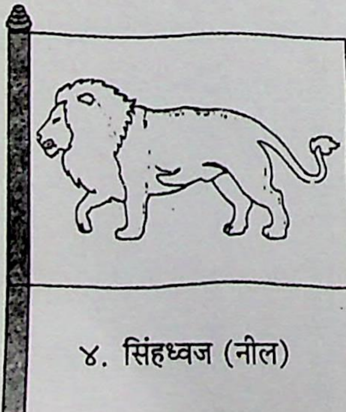


३. महिषध्वज (कृष्ण)

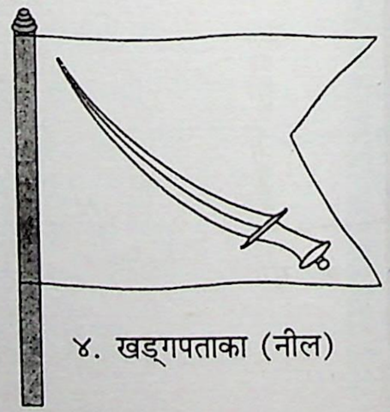


३. दण्डपताका (कृष्ण)

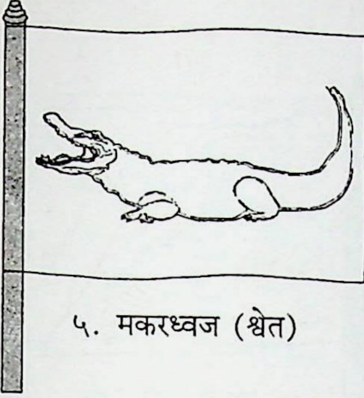
सिंह = श्वेतवर्ण
खड्ग= पीतवर्ण



४. सिंहध्वज (नील)

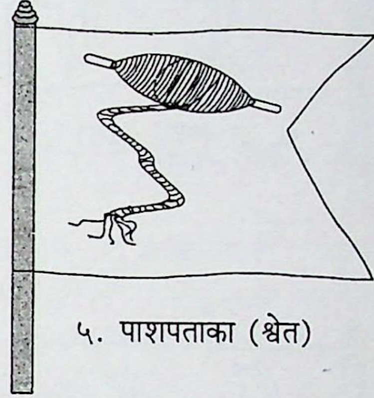


४. खड्गपताका (नील)

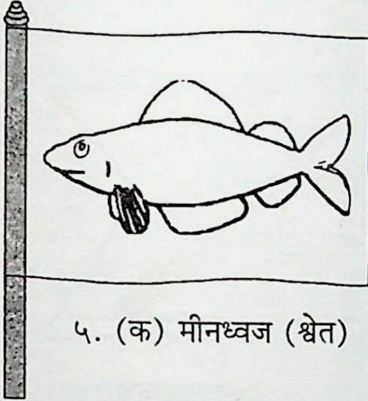


५. मकरध्वज (श्वेत)

मकर = धूम्रवर्ण
मछली = धूम्रवर्ण
पाश = धूम्रवर्ण

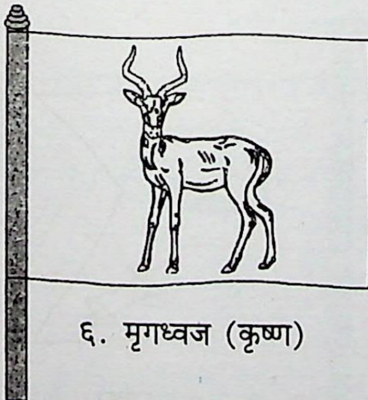


५. पाशपताका (श्वेत)

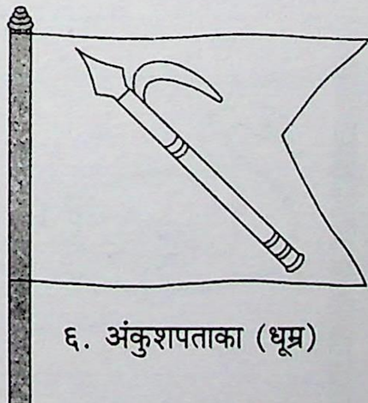


५. (क) मीनध्वज (श्वेत)

मृग = हरितवर्ण
अंकुश = रक्तवर्ण

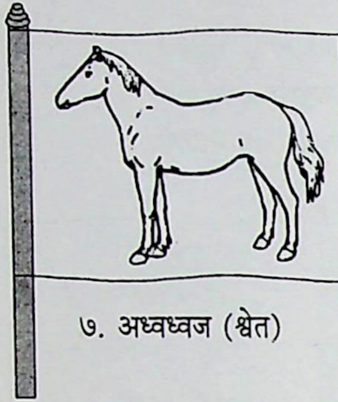


६. मृगध्वज (कृष्ण)

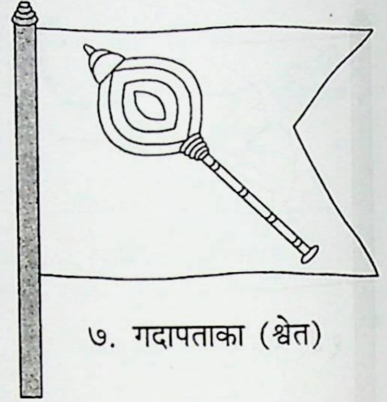


६. अंकुशपताका (धूम्र)

अश्व = स्वर्णवर्ण
गदा = पीतवर्ण

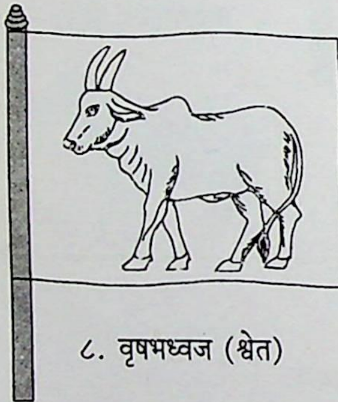


७. अश्वध्वज (श्वेत)

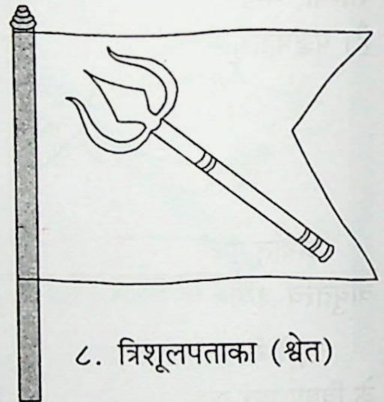


७. गदापताका (श्वेत)

वृषभ = रक्तवर्ण
त्रिशूल = कृष्णवर्ण



८. वृषभध्वज (श्वेत)

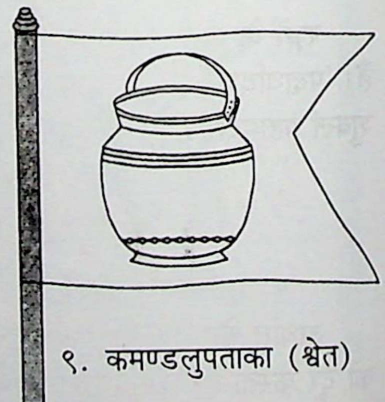


८. त्रिशूलपताका (श्वेत)

हंस = श्वेतवर्ण या रक्तवर्ण
कमण्डलु = पीतवर्ण



९. हंसध्वज (श्वेत)

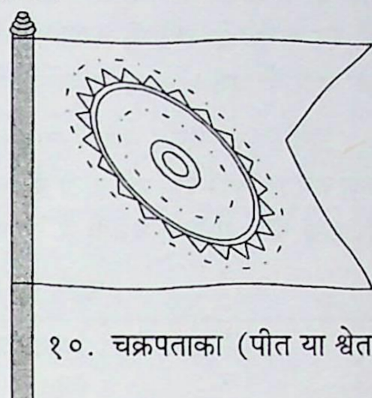


९. कमण्डलुपताका (श्वेत)

गरुड़ = पीतवर्ण

चक्र = विचित्रवर्ण


१०. गरुड़ध्वज (पीत या श्वेत)


१०. चक्रपताका (पीत या श्वेत)

पाँच रङ्गों का महत्त्व—मण्डप की सज्जा में ध्वजाओं, पताकाओं, वाहनों, आयुधों, स्तम्भों, मेखलाओं आदि में जिन पाँच रङ्गों का प्रयोग होता है, उनका आधार तार्किक है। पञ्चमहाभूतों के पाँच वर्ण होते हैं; जैसा कि पदार्थादर्शग्रन्थ में वर्णित है—

पीतं क्षितिस्तु विज्ञेया शुक्लमापः प्रकीर्तिताः।
तेजो वै रक्तवर्णः स्याच्छ्यामो वायुः प्रकीर्तितः।।

आकाशं कृष्णवर्णन्तु पञ्चमं तु महामुने।

अर्थात् पृथ्वी तत्त्व का रङ्ग पीत है, जल का वर्ण शुक्ल है, अग्नितत्त्व रक्त वर्ण का, वायुतत्त्व श्याम वर्ण का तथा आकाश कृष्ण वर्ण का माना गया है।

रङ्गों के अधिदेवता—श्वेत वर्ण के अधिदेवता रुद्र, रक्त वर्ण के ब्रह्मा, पीत वर्ण के विष्णु एवं कृष्ण वर्ण के श्री अच्युत एवं श्याम वर्ण के अधिदेवता नाग हैं; यथा—

सितेऽधिदेवता रुद्रे रक्ते ब्रह्माधिदेवता। पीतेऽधिविष्णुः कृष्णे चैवाच्युतस्मृतः।।
श्यामेऽधिदेवता नागो समाख्यातो मयानघ।।

रङ्गों के आपदानाशक प्रभाव—रङ्ग रोगों तथा विभिन्न बाधाओं का शमन करते हैं। 'पदार्थादर्श' ने ऐसा माना है और कहा है कि—

शुक्लं ग्रहापदो हन्ति रक्तं क्रूरगणोद्भवम्। कृष्णं सर्वासुरोत्साहं नीलं वैनायिकीं तथा।।
पैशाचीं राक्षसीञ्चैव निघ्नन्ति हरितं रजः।
तस्माद् होमेऽभिषेके च यागे चैव विशेषतः।।

वर्तयेन्मण्डलं तैस्तु देवसन्तुष्टिकारकम्।

अर्थात् श्वेत वर्ण ग्रहजन्य कष्टों को दूर करता है। लाल रङ्ग क्रूर गणों के उपद्रवों को दूर करता है। काला रङ्ग सम्पूर्ण राक्षसों के उत्साह को भङ्ग करता है। नीला रङ्ग

विनायक गणों की पीड़ा का निराकरण करता है। हरित वर्ण पिशाचों तथा राक्षसों की पीड़ा दूर करता है। अत: होम में, अभिषेक में तथा याग में विशेष रूप से सर्वतोभद्रादि मण्डलों की रचना करनी चाहिये; क्योंकि इनमें पाँच वर्णों का प्रयोग होता है। (षोडशमातृका रक्त वर्ण से एवं क्षेत्रपाल कृष्ण वर्ण से बनाए जाते हैं)।

सर्वतोभद्रमण्डल तथा लिंगतोभद्र के बाहर की मेखला सत्त्व (श्वेत), रज (रक्त) तथा तम (कृष्ण) वर्ण की होती है। कुण्ड-मेखलाओं में इन्हीं तीन रङ्गों का प्रयोग होता है। जब पाँच मेखला बनती हैं तो पाँचों वर्णों का प्रयोग होता है।।२८-२९।।

रङ्गों के गुण-धर्मसूचक चक्र

रंग	पीत वर्ण	शुक्ल वर्ण (श्वेत)	रक्त वर्ण	श्याम वर्ण (थोड़ा काला)	कृष्ण वर्ण (गहरा काला)
तत्त्व	पृथ्वी	जल	अग्नि	वायु	आकाश
अधिदेवता	विष्णु	रुद्र	ब्रह्मा	नाग	अच्युत
बाधाशान्ति	नीलवर्ण से	ग्रहापदा	क्रूरगणों के उपद्रव	हरित वर्ण से	सर्वासुरों के उत्साह
अन्य वर्ण	वैनायिकी बाधा		पैशाचीराक्षसी बाधा		

मण्डपालङ्करणानि वदन्मण्डपकारयितृभ्य आशिषं शार्दूलविक्रीडितेनाह—

उद्यत्पत्रफलातिनम्रविलसत् रम्भाभिरालिङ्गितः
स्तम्भोऽनेकदलै रसालविटपैः सर्वत्र संवेष्टितः।
राजत् चामरसम्प्रबद्धमुकुरोदञ्चद्वितानान्वितो
युक्तः पुष्पफलैर्फलाय भवतां भूयान्महामण्डपः ॥३०॥

बलदाभाष्यम्—उद्यन्त्युन्नतानि पत्राणि यासां तास्तथा फलैरतिनम्रा अत एव विलसन्त्यः शोभिता या रम्भाः कदल्यस्ताभिरालिङ्गितः कुक्षौ कृतः स्तम्भो यस्य सः तथा सर्वत्राभितो रसालानामाम्राणां ये विटपा वृक्षास्तैरर्थात्तदुद्भवैरनेकदलैः पत्रसमूहैः संवेष्टित आवृत्तस्तथा राजन्ति दीप्यमानानि यानि चामराणि तैस्तथा सं सम्यक् प्रकर्षेण दृढेन बद्धा जटिता ये मुकुरा आदर्शास्तैलस्तथा उदूर्ध्वमञ्चन्ति स्फुरन्ति यानि वितानानि तैश्चान्वितो युक्तः पुष्पफलैश्चापि युक्तो महामण्डपो भवतां फलायोत्तमफलप्राप्तये भूयादिति। यत उक्तं सिद्धान्तशेखरे—

आख्यातसाधनैः क्लृप्तः सरलः सुसमानकः।
मनोज्ञो मण्डपो योऽसौ कर्मकर्तुः शुभावहः।। इति ।।३०।।

मण्डपप्रभा—मण्डप की शोभा का वर्णन करते हुए यज्ञकर्त्ता यजमान के लिये इस श्लोक में शुभकामना की जा रही है—

कदली-वृक्षों के स्तम्भ, जिनके पत्र ऊपर को हैं तथा फल नीचे को झुके हैं, उनसे युक्त; अनेक गुच्छों से युक्त आम्रपल्लवों वाला जिसके स्तम्भ वेष्टित हैं, जिसमें चामर, दर्पण आदि लटक रहे हैं, जो वितानयुक्त है, नाना पुष्पों एवं फलों से युक्त है, ऐसा महामण्डप आप (यजमान एवं सहयोगियों के लिये) शुभ फल प्रदान करने वाला हो।

तात्पर्य यह है कि मण्डप को माङ्गलिक पत्र, फल-पुष्पादि से सुसज्जित कर देना चाहिये। इस सम्बन्ध में कुण्डमार्तण्ड ग्रन्थ का सुझाव निम्न प्रकार है—

फलालिरञ्जितच्छदल्लसत्कदल्यधिष्ठितम्। प्रसूनगुच्छसंयुतं विधेहि मण्डपश्रियम्।।

अर्थात् फलयुक्त कदलीस्तम्भों, पुष्पगुच्छों आदि से मण्डप की श्री बढ़ जाती है।।३०।।

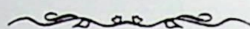
रुद्रयाग एवं शक्तियाग का मण्डप (एककुण्डीपक्ष में)
(ध्वजा-पताकाओं में दिक्पालों के क्रमाङ्क दिये हैं)

पूर्व
पताका
सुदृढ तोरण
ग्रहवेदी
यो० मातृका
उत्तर
सुदृढ तोरण
हवन कुण्ड
प्रधान वेदी (लिङ्गतोभद्र या सर्वतो भद्र) शय्याधिवास
सुदृढ तोरण
दक्षिण
क्षेत्रपाल
वास्तुवेदी
सुदृढ तोरण
पश्चिम

इस प्रकार श्रीमद्‌विट्ठलदीक्षितविरचित मण्डपकुण्डसिद्धि ग्रन्थ के प्रथम अध्याय की महर्षि अभय कात्यायनकृत 'मण्डपप्रभा' हिन्दी टीका पूर्ण हुई ॥१॥



द्वितीयोऽध्यायः
(कुण्डसिद्धिप्रकरणम्)



तत्र नवकुण्डनिवेशनं विपरीताख्यानक्याह—

प्राच्याःचतुष्कोणभगेन्दुखण्डत्रिकोणवृत्ताङ्गभुजाम्बुजानि ।
अष्टास्त्रि शक्रेश्वरयोस्तु मध्ये वेदास्त्रि वा वृत्तमुशन्ति कुण्डम् ॥१॥

बलदाभाष्यम्—प्राच्याः पूर्वदिशः सकाशात् चतुष्कोणं प्रसिद्धं भगं योनिकुण्डमिन्दुखण्डं वृत्तार्धं त्रिकोणं प्रसिद्धं वृत्तं वर्त्तुलकुण्डमङ्गभुजं षड्भुजमम्बुजं कमलमेतानि अष्टास्त्र्यष्टकोणञ्चैतानि कुण्डान्याचार्या उशन्ति। तु पुनः शक्र इन्द्रस्तस्य पूर्वा दिगीश्वरो महादेवस्तस्येशानदिगनयोर्मध्येऽन्तराले वेदास्त्रि चतुष्कोणं वा वृत्तं कुण्डमर्थादाचार्यकुण्डमाचार्या उशन्तीच्छन्ति। तथोक्तं शारदातिलके—

आचार्यकुण्डं मध्ये स्याद्गौरीपतिमहेन्द्रयोः।। इति ।

सिद्धान्तशेखरेऽपि—

पुरन्दरेशयोर्मध्ये वृत्तं वा चतुरस्त्रकम्।
तदाचार्यविनिर्दिष्टम्.......................।। इति।।१।।

मण्डपप्रभा—अब नवकुण्डी होम करना हो तो कुण्डों के आकार के अनुसार उनके स्थान का निश्चय निम्न प्रकार से करना चाहिये—

नवकुण्डपक्ष में कुण्डों की स्थिति—नवकुण्डी पक्ष में पूर्व दिशा में सम चतुरस्त्र कुण्ड, अग्नि कोण में योनिकुण्ड, दक्षिण दिशा में अर्धचन्द्र कुण्ड, नैर्ऋत्य कोण में त्रिकोण कुण्ड, पश्चिम में वृत्त कुण्ड, वायव्य में षड्भुज कुण्ड, उत्तर में पद्म कुण्ड, ईशान में अष्टभुज कुण्ड तथा ईशान एवं पूर्व कुण्डों के मध्य में पुनः एक चतुरस्त्र अथवा वृत्तकुण्ड बनाना चाहिए।

नवकुण्डी पक्ष में आचार्य कुण्डनिर्णय—यद्यपि इस श्लोक में आचार्यकुण्ड (प्रधानकुण्ड) कौन-सा हो, यह संकेत नहीं है; परन्तु शारदातिलक ग्रन्थ में आचार्य कुण्ड को ईशान तथा पूर्व के मध्य में कहा गया है। अतः इस ग्रन्थ का आशय भी यही मानना चाहिये—

आचार्यकुण्डं मध्ये स्याद् गौरीपतिमहेन्द्रयोः।

इसी प्रकार का मत सिद्धान्तशेखर में भी व्यक्त किया गया है—

पुरन्दरेशयोर्मध्ये वृत्तं वा चतुरस्रकम्।
तदाचार्यविनिर्दिष्टम् .... ।। इति।

जब आचार्यकुण्ड (नवकुण्डी पक्ष में) पूर्वीशान के मध्य में होता है तब मध्य में प्रधान वेदी या प्रधान पीठ निर्मित होता है।।१।।

नवकुण्डी पक्ष में कुण्डों की स्थिति का चक्र

ईशान में अष्टास्रकुण्ड	ईशान एवं पूर्व के मध्य में चतुरस्र आचार्यकुण्ड	पूर्व में) चतुरस्रकुण्ड	(आग्नेय में) योनिकुण्ड
पद्मकुण्ड (उत्तर में)	मध्य में प्रधान वेदी		दक्षिण में अर्धचन्द्रकुण्ड
षडस्रकुण्ड (वायव्य में)	वृत्तकुण्ड (पश्चिम में)		त्रिकोणकुण्ड (नैर्ऋत्य में)

पञ्चकुण्डैककुण्डयोर्निवेशनमिन्द्रवज्रयाह—

आशेशकुण्डैरिह पञ्चकुण्डी चैकं यदा पश्चिमसोमशैवे।
वेद्याः सपादेन करेण यद्वा पादान्तरेणाखिलकुण्डसंस्था ।।२।।

बलदाभाष्यम्— आशा दिशः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरास्तथेश ईशानकोणः तेषु यानि चतुरस्रार्धचन्द्रवृत्ताम्बुजाष्टास्रकाणि कुण्डानि तैरिहात्र पञ्चकुण्डी स्यात्। तथोक्तं नारदीये—

यत्रोपदिश्यते कुण्डं चतुष्कं तत्र कर्मणि।
वेदास्रमर्धचन्द्रं च वृत्तं पद्मनिभं तथा।।

कुर्यात्कुण्डानि चत्वारि प्राच्यादिषु विचक्षणः।
पञ्चमं कारयेत्कुण्डमीशदिग्गोचरं द्विजः।।

चात्पुनर्यदैकमेव कुण्डं चिकीर्षितं स्यात्तदा पश्चिमसोमशैवेऽर्थात् पश्चिमे चेद्वृत्तमुत्तरे पद्मनिभमीशाने चेदष्टास्रं कार्यम्। वेद्या मध्यवेद्याः सकाशात्सपादेन करेण सपादहस्तेनान्तरेण यद्वा पादान्तरेण मध्यवेद्या यो विस्तारस्तस्य पादश्चतुर्थांशस्तदन्तरेणाखिलानां सर्वेषां कुण्डानां संस्था स्थितिः स्यात्। तथोक्तं वशिष्ठसंहितायाम्—

वेदीपादान्तरं हित्वा नव कुण्डानि पञ्च च। इति ।।

नारदीये— कुण्डवेद्यन्तरं चैव सपादकरसम्मितम्।।२।।

मण्डपप्रभा—अब पञ्चकुण्डी पक्ष में किस दिशा में कौन-सा कुण्ड हो, यह बताया जा रहा है।

पञ्चकुण्डी पक्ष में चार कुण्ड आशाओं (मुख्य दिशाओं) में बनते हैं तथा पाँचवाँ ईश (ईशान) में बनता है। इसी अभिप्राय को ग्रन्थकार ने 'आशेशकुण्डी' के द्वारा व्यक्त किया है। इसमें १. पूर्व दिशा में चतुरस्र कुण्ड, २. दक्षिण में अर्धचन्द्र कुण्ड, ३. पश्चिम में वृत्तकुण्ड, ४. उत्तर में पद्मकुण्ड तथा ५. ईशान में चतुरस्र या वृत्तकुण्ड बनाना चाहिये (मतान्तर से यहाँ अष्टास्र कुण्ड भी बनाया जाता है)। जैसा कि नारदीय में कहा भी है—

यत्रोपदिश्यते कुण्डं चतुष्कं तत्र कर्मणि।
वेदास्रमर्धचन्द्रञ्च वृत्तं पद्मनिभं तथा।।

कुर्यात् कुण्डानि चत्वारि प्राच्यादिषु विचक्षणः।
पञ्चमं कारयेत्कुण्डं ईशदिग्गोचरं द्विजः।।

पञ्चकुण्डी पक्ष में कुण्डों की स्थिति का चक्र

नवग्रह वेदी		षोडश-मातृका
	प्रधान वेदी	
क्षेत्रपाल		वास्तु

पञ्चकुण्डी पक्ष में यदि याग हो तो आचार्य कुण्ड को मध्य में ही रखना चाहिये। प्रतिष्ठा में पूर्व एवं ईशान के मध्य भी रख सकते हैं, ऐसा भी कुछ मूर्धन्य विद्वानों का अभिमत है।

एककुण्डी पक्ष में—एक कुण्ड बनाना अभीष्ट हो तो ग्रन्थकार कहते हैं कि— 'चैकं यदा पश्चिमसोमशैवे' अर्थात् एककुण्डी पक्ष में उस कुण्ड को पश्चिम दिशा में अथवा उत्तर दिशा में अथवा शैव (ईशान) कोण में बनाना चाहिये। अब प्रश्न उठता

है कि तीन विकल्प क्यों ? तो उसका उत्तर यह है कि देवप्रतिष्ठा में तो उत्तर में ही कुण्ड-निर्माण होना चाहिये। शेष में विकल्प है। इन कुण्डों में दिशाओं का निर्धारण मध्य-वेदी से सवा हाथ की दूरी पर अभीष्ट दिशा में करना चाहिये (यहाँ मध्य वेदा से तात्पर्य मध्यखण्ड से लेना चाहिये)।

कुण्डसंख्या में प्रकल्प—सामान्यतः नवकुण्डी, पञ्चकुण्डी तथा एककुण्डी होम— ये तीन पक्ष हैं; परन्तु रुद्रयाग में एकादश कुण्ड भी बनाए जा सकते हैं तथा चतुष्कुण्डी यज्ञ का विधान भी मिलता है। दानमयूख में सात कुण्डों का भी उल्लेख है। इन्हें दान-कार्य में बनाना चाहिए—

नवैकादश कुण्डानि कुर्यादुत्तममण्डपे।
चतुष्कुण्डी मध्यमे स्यात्कनिष्ठेऽप्येककुण्डकम्।। (उत्तरतन्त्र)

कारयेत्सप्तकुण्डानि काञ्चनानि विचक्षणः।
प्रादेशमात्राणि तथाऽरत्निमात्राणि वा पुनः।। (दानमयूख)

उत्तमा नवकुण्डी स्यात्सप्तकुण्डी च मध्यमा।
पञ्चकुण्ड्याधमा प्रोक्ता कैकश्चन्मात्स्वचो बलात्।। (कुण्डकौमुदी)

एककुण्डीपक्षे विशेषमाह शलिन्या—

विप्राच्छ्रुत्यस्त्रं च वृत्तं च वृत्तार्धं त्र्यस्त्रि स्याद्वेदकोणानि वापि।
सर्वाण्याहुर्वृत्तरूपाणि चान्ये योन्याकाराण्यङ्गनानान्तु तानि ।।३।।

बलदाभाष्यम्—विप्राद् ब्राह्मणादेरेककुण्डीपक्षे श्रुत्यस्त्रं चतुर्भुजं च पुनः वृत्तं वर्तुलं च पुनः वृत्तार्धमर्धचन्द्रं त्र्यस्त्रि त्रिकोणं स्यादपि वा पक्षान्तरे सर्वाणि ब्राह्मणाद्युक्तकुण्डानि चतुरस्राण्याहुरन्ये च वृत्तरूपाण्याहुः। तथोक्तं शारदायाम्—

विप्राणां चतुरस्रं स्याद्राज्ञां वर्तुलमिष्यते।
वैश्यानामर्धचन्द्राभं शूद्राणां त्र्यस्रमीरितम्।।

चतुरस्रं तु सर्वेषां केचिदिच्छन्ति तान्त्रिकाः।

पञ्चरत्ने— सर्वाणि तानि वृत्तानि चतुरस्राणि वा सदा।। इति।

तु पुनरङ्गनानां ब्राह्मणाद्यङ्गनानां यज्ञकर्तृणां यागे तानि वर्णविभागोक्तानि कुण्डानि योन्याकाराण्यर्थाद्योनिकुण्डान्येवाहुः। तथाह सनत्कुमारः—

स्त्रीणां कुण्डानि विप्रेन्द्र योन्याकाराणि कारयेत्। इति।
अत्र दिशस्तु प्रागुक्ता एव योनिनिवेशनन्तु दिक्प्राधान्येनेति।।३।।

मण्डपप्रभा—अब वर्णभेद एवं लिङ्गभेद से कुण्डों के आकार का कथन करते हुए कहते हैं कि जब एक ही कुण्ड बनाना हो तो—

१. ब्राह्मण के लिये चतुरस्र कुण्ड बनायें।
२. क्षत्रिय के लिये वृत्ताकार कुण्ड बनायें।
३. वैश्यों के लिये अर्धचन्द्र कुण्ड का निर्माण करें।
४. शूद्रों के लिये त्रिकोण कुण्ड स्थापित करने का विधान है।
५. स्त्रियों के लिये योनिकुण्ड बनाना चाहिये।

अथवा समस्त वर्णों के लिये चतुरस्र या वृत्तकुण्ड का निर्माण करना अभीष्ट है। शारदातिलक में भी यही मत प्राप्त है—

विप्राणां चतुरस्रं स्याद् राज्ञां वर्तुलमिष्यते।
वैश्यानामर्धचन्द्राभं शूद्राणां त्र्यस्रमीरितम्।।

चतुरस्रन्तु सर्वेषां केचिदिच्छन्ति तान्त्रिकाः।।

इसी प्रकार स्त्रियों के लिये योनिकुण्ड-निर्माण का आदेश सनत्कुमारसंहिता में दिया गया है—

स्त्रीणां कुण्डानि विप्रेन्द्र योन्याकाराणि कारयेत्।

आचार्यकुण्ड-निर्णय—जहाँ हवनप्रधान कर्म होगा, वहाँ कुण्ड मध्य में भी बनाते हैं; अतः नवकुण्डी तथा पञ्चकुण्डी पक्ष में आचार्यकुण्ड मध्य में ही होता है; परन्तु दीक्षाकार्य एवं प्रतिष्ठा में आचार्यकुण्ड पूर्वेशान मध्य ही में रहना चाहिये— यही अभिप्राय 'आचार्यकुण्डं मध्ये स्याद्गौरीपतिमहेन्द्रयोः' आदि वाक्यों का है।

नवग्रहयाग—जब नवग्रहों का हवन किया जाय तो सूर्य की प्रधानता से मध्य में जो सूर्यकुण्ड बनेगा, वही आचार्यकुण्ड होगा। जहाँ मध्य में दो कुण्ड हों, वहाँ मध्य-खण्ड के दो कुण्डों में दक्षिण दिशा का कुण्ड ही आचार्यकुण्ड होगा।

शतमुखयाग—जहाँ एक सौ (१०८) कुण्ड हों, वहाँ विशेष वचन से आचार्यकुण्ड होता है, जिसकी योनि पूर्व में होती है।

देवप्रतिष्ठा में—नवकुण्डीपक्ष में पूर्वेशानमध्य का कुण्ड आचार्यकुण्ड होता है। परन्तु पञ्चकुण्डी से प्रतिष्ठा कराने पर आचार्यकुण्ड मण्डप के ईशानखण्ड में आचार्यकुण्ड रहता है। श्री रामवाजपेयी ने ईशान तथा पूर्व का कुण्ड ही आचार्य कुण्ड स्वीकार किया है। प्रतिष्ठा में जहाँ एक ही कुण्ड बने; वहाँ उसे ईशान, पूर्व, उत्तर या पश्चिम में विकल्प से बनाया जाता है।

चतुष्कुण्डी-विधान—यदि प्रतिष्ठाकार्य में चार कुण्डों का निर्माण हो तो पूर्व दिशा प्रधान होने से उसी का कुण्ड आचार्य कुण्ड होना चाहिये।

सप्तकुण्डी-विधान—देवप्रतिष्ठा में यदि सातकुण्डी विधान हो तो पूर्व दिशा का कुण्ड आचार्य कुण्ड होता है।

 क ११३२८४

त्रयोदश कुण्ड—तन्त्रग्रन्थों में त्रयोदश कुण्डों के होम का भी एक पक्ष प्राप्त है—

त्रयोदशात्र कुण्डानि परितः कारयेद् बुधः।
उक्तलक्षणयुक्तानि प्रधानं त्वग्निकोणके।।

अत्र मण्डपवेद्या परितः दिक्षु द्वे विदिक्षु चैकेकं प्रधानञ्च त्रयोदशकुण्डानि। आदौ पूर्वादि चतुर्दिक्षु एकैकम्। कोणे चैकं प्रधानं कुण्डं पञ्चकुण्डेभ्यो बहिः परितः अष्टदिक्षु एकैककुण्डं एवं त्रयोदशकुण्डानि।

अर्थात् इसमें प्रथम पञ्चकुण्डी पक्ष की भाँति चारो मुख्य दिशाओं में एक-एक कुण्ड का निर्माण कर पाँचवाँ प्रधान कुण्ड (आचार्य कुण्ड) अग्निकोण में बनाते हैं। तदुपरान्त सभी आठों दिशाओं में एक-एक कुण्ड का निर्माण कर दिया जाता है। तन्त्र-सार में यह विधान मिलता है।।३।।

कुण्डफलमाह—

सिद्धिः पुत्राः शुभं शत्रुनाशः शान्तिर्मृतिच्छिदे।
वृष्टिरारोग्यमुक्तं हि फलं प्राच्यादिकुण्डके ।।४।।

बलदाभाष्यम्—प्राच्यादिषु पूर्वाद्यष्टदिक्षु यत्कुण्डं तत्र पूर्वकुण्डे चतुरस्रे सिद्धिरग्निकोणे योनिकुण्डे पुत्राः पुत्राप्तयोर्दक्षिणेऽर्धचन्द्रे शुभं निर्ऋतौ त्र्यस्रकुण्डे शत्रुनाशः पश्चिमे वर्तुले शान्तिर्वायौ षडस्रे मृतिच्छिदे मारणछेदन उत्तरे पद्मकुण्डे वृष्टिरीशानेऽष्टास्रिकुण्डे आरोग्यमेतत्फलमुक्तमाचार्यैरिति। एतेन स्वस्वाभीष्टकार्यसिद्धये यथोक्तकुण्डं रचयेदिति फलितार्थः। तथोक्तं शारदायाम्—

सर्वसिद्धिकरं कुण्डं चतुरस्रमुदाहृतम्।
पुत्रप्रदं योनिकुण्डमर्धेन्द्वाभं शुभप्रदम्।।

शत्रुक्षयकरं त्र्यस्रं वर्तुलं शान्तिकर्मणि।
छेदमारणयोः षष्ठं षडस्रं पद्मसन्निभम्।।

वृष्टिदं रोगशमनं कुण्डमष्टास्रमीरितम्।।४।।

मण्डपप्रभा—अब आकारानुसार कुण्डों का फल कहते हैं—

पूर्वादि दिशाओं में जो चतुरस्रादि कुण्ड बनते हैं, उनके फल इस प्रकार हैं—
१. चतुरस्र कुण्ड कार्यसिद्धि प्रदान करता है। २. योनि कुण्ड से पुत्र प्राप्ति होती है। ३. अर्धचन्द्र कुण्ड से कल्याण होता है। ४. त्रिकोण कुण्ड से शत्रु का नाश होता है। ५. वर्तुल कुण्ड से शान्ति प्राप्त होती है अथवा शान्तिकर्म में वर्तुल कुण्ड का उपयोग होता है। ६. षडस्र कुण्ड का उपयोग मारण या उच्छेद कर्म के लिये किया जाता है। ७. पद्मकुण्ड वर्षाकारक होता है तथा ८. अष्टास्र कुण्ड से आरोग्य की प्राप्ति होती है। जैसा कि शारदातिलक में कहा भी गया है—

सर्वसिद्धिकरं कुण्डं चतुरस्त्रमुदाहृतम्।
पुत्रप्रदं योनिकुण्डं अर्धेन्द्वाभं शुभप्रदम्।।

शत्रुक्षयकरं त्र्यस्त्रं वर्तुलं शान्तिकर्मणि।
छेदमारणयोः षष्ठं षडस्त्रं पद्मसन्निभम्।।

वृष्टिदं रोगशमनं कुण्डमष्टास्त्रमीरितम्।।

इन कुण्डों के अतिरिक्त पञ्चास्त्र तथा सप्तास्त्र कुण्डों का निर्माण भी कुण्डार्कादि ग्रन्थों में निर्दिष्ट है। पञ्चास्त्र कुण्ड अभिचारकर्म की शान्ति करता है तथा सप्तकोण कुण्ड भूतदोष की शान्ति कर देता है।।४।।

हवनसङ्ख्यया कुण्डमानं शिखरिण्याह—

शतार्धे रत्निः स्याच्छतपरिमितेऽरत्निविततं
सहस्त्रे हस्तं स्यादयुतहवने हस्तयुगले।
चतुर्हस्तं लक्षे प्रयुतहवने षट्करमितं
ककुब्भिर्वा कोटौ नृपकरमिति प्राहुरपरे ।।५।।

बलदाभाष्यम्—शतार्धे पञ्चाशन्मितहवने रत्निरेकविंशत्यङ्गुलमितम्। शतपरिमिते शतसङ्ख्याकहवनेऽरत्निः सार्द्धद्वाविंशत्यङ्गुलस्तेन विततं विस्तृतं तत्तुल्यमिति यावत्। सहस्रे सहस्राहुतौ हस्तमेकहस्तमितम् अयुतहवने दशसहस्राहुतौ हस्तयुगलं द्विहस्तमितम्। लक्षे लक्षाहुतौ चतुर्हस्तं चतुर्हस्तमितम्। प्रयुतहवने दशलक्षाहुतौ षट्करमितं कुण्डं प्राहुः। कोटौ शतलक्षाहुतौ ककुब्भिरष्टभिर्हस्तैः सममपरे नृपकरं षोडशहस्तमपि कुण्डं प्राहुः। तथोक्तं भविष्ये—

मुष्टिमानं शतार्धे तु शते चारत्निमात्रकम्।
सहस्रे त्वथ होतव्ये कुण्डं कुर्यात्करात्मकम्।।

द्विहस्तमयुते तच्च लक्षहोमे चतुःकरम्।
दशलक्षमिते होमे षट्करं सम्प्रचक्षते।।

अष्टहस्तात्मकं कुण्डं कोटिहोमेषु नाधिकम्।। इति।

ननूक्तसङ्ख्यया न्यूनाधिके हवने किम्मानं कुण्डमित्याशङ्कापरिहारायोच्यते। भविष्योक्तवचनबलादित्थमवगम्यते यत्पञ्चाशता न्यूनेन कुण्डं पञ्चाशदाहुतिमारभ्यैकोनशतं यावदाहुतौ। रत्निमितमेवं शतमारभ्येकोनसहस्त्रं यावदरत्निमितमेवं सहस्रमारभ्यैकोनायुतं यावदेकहस्तमितमेवमयुतमारभ्यैकोनलक्षं यावद्धस्तद्वयमेवमग्रेऽप्ययमेवं सिद्धान्त इति। यत्तु कैश्चित्—

अन्तरं नवभिर्भक्तं यत्पूर्वापरकुण्डयोः।
अङ्गुलानि यदाप्तं तु सा वृद्धिरिष्टहोमकः।।

इत्यनेन वृद्धिरुक्ता सा न समीचीना यतोऽष्टसहस्रहवने कर्त्तव्ये सहस्रहवनोक्तपूर्वकुण्ड-मानम् २४ अङ्गुलानि दशसहस्रापरकुण्डमानम् ३४ अङ्गुलानि अनयोरन्तरं १० नवभक्तं लब्धमङ्गुलं १ एतावदेवैकरूपा वृद्धिः सहस्रमारभ्य दशसहस्रपर्यन्तं स्यादिति महदसङ्गतमिति बुद्धिमद्भिर्विचिन्त्यमिति।।५।।

मण्डपप्रभा—किस सङ्ख्या की आहुति में कितने मान का कुण्ड बनाया जाय इसी का निर्देश इस शिखरिणी छन्द में किया गया है—

१. यदि पचास आहुति (शतार्ध) से लेकर ऊपर निन्यानबे तक आहुति डालनी हो तो रत्निप्रमाण (२१ अङ्गुल) का कुण्ड बनायें तथा २. सौ आहुति से नौ सौ निन्यानबे आहुतियों के लिए अरत्नि प्रमाण (बाइस अङ्गुल) का कुण्ड बनायें। ३. एक सहस्र से लेकर नौ सहस्र नौ सौ निन्यानबे की आहुति तक एक हाथ (२४ अङ्गुल) प्रमाण के कुण्ड का व्यवहार करें। ४. इसके ऊपर दश सहस्र से निन्यानबे सहस्र नौ सौ निन्यानबे तक की आहुति हेतु दो हाथ प्रमाण का कुण्ड बनायें। ५. एक लाख से प्रयुत प्रमाण में एक न्यून तक अर्थात् नौ लाख निन्यानबे सहस्र नौ सौ निन्यानबे पर्यन्त चार हाथ के कुण्ड का निर्माण करें। ६. इसके ऊपर दस लाख से एक करोड़ तक छः हाथ का कुण्ड तथा उसके भी ऊपर ७. आठ हाथ का कुण्ड बनाना चाहिये। इसका उपयोग कोटिहोम में होता है। भविष्यपुराण में कहा भी है—

मुष्टिमानं शतार्धे तु शते चारत्निमात्रकम्।
सहस्रे त्वथ होतव्ये कुण्डं कुर्यात्करात्मकम्।।

द्विहस्तमयुते तच्च लक्षहोमे चतुष्करम्।
दशलक्षमिते होमे षट्करं सम्प्रचक्षते।।

अष्टहस्तात्मकं कुण्डं कोटिहोमेषु नाधिकम्।

होमाहुति के अनुसार कुण्ड-क्षेत्रफल का चक्र

कुण्ड का क्षेत्रफल	रत्नि	अरत्नि	हस्त	द्विहस्त	चतुर्हस्त	षड्हस्त	अष्ट-हस्त
आहुति-प्रमाण	शताहुति-पर्यन्त	सहस्राहुति-पर्यन्त	दशसहस्रा-हुति-पर्यन्त	लक्षाहुति-पर्यन्त	दशलक्षा-हुति-पर्यन्त	दशलक्षा-हुति से अधिक पर	कोटि होम में

प्रकारान्तरेण कुण्डमानमुपजातिकयाह—

लक्षैकवृद्ध्या दशलक्षकान्तं करैकवृद्ध्या दशहस्तकं च।
कोट्यर्धदिग्विंशतिलक्षलक्षदले मुनीष्वर्त्तुकृशानुभिश्च ।।६।।

बलदाभाष्यम्—लक्षैकवृद्ध्या दशलक्षकानामन्तं मर्यादीकृत्य दशलक्षकान्तमर्थादेकलक्षमारभ्य लक्षैकवृद्ध्या दशलक्षपर्यन्तमित्यर्थः। एवमेव करैकमारभ्यैकैककरवृद्ध्या दशहस्तकं दशहस्तपर्यन्तं यथा लक्षाहुतावेकहस्तं लक्षद्वयाहुतौ द्विहस्तं लक्षत्रयाहुतौ त्रिहस्तमित्थमग्रेऽपि ज्ञेयम्। च पुनः कोटेरर्धे पञ्चाशल्लक्षे दिग्दशलक्षे विंशतिलक्षे लक्षदलेऽर्थात्पञ्चाशत्सहस्राहुतौ क्रमेण मुनयः सप्त ७ इषवः पञ्च ५ षड् ऋतवः ६ कृशा नवस्त्रयः ३ एतैश्चकाराद्धस्तैः समं कुण्डं प्राहुरिति पूर्वश्लोकतोऽध्याहारः। इयदेव परिमाणं कुण्डस्याप्तैर्ग्रन्थकर्तृभिः स्वीकृतम्। तथोक्तं शारदायाम्—

एकहस्तमितं कुण्डं लक्षहोमे विधीयते।
लक्षाणां दशकं यावत्तावद्धस्तेन वर्धयेत्।।

सिद्धान्तशेखरे—

लक्षार्धे त्रिकरं कुण्डं लक्षहोमे चतुष्करम्।
कुण्डं पञ्चकरं प्रोक्तं दशलक्षहुतौ क्रमात्।।

षड्ढस्तं लक्षविंशत्यां कोट्यर्धे हस्तसप्तकम्।। इति।

अथात्र सूक्ष्मद्रव्यहवने लक्षैकवृद्ध्येति पक्षः स्थूलद्रव्यहवने शतार्धे रत्निरिति पक्षो ग्राह्य इत्यस्माकं मतमिति।।६।।

मण्डपप्रभा—पूर्व के श्लोक में कुण्डप्रमाण स्थूल द्रव्यों के हवनार्थ बताया गया है। अब इसमें सूक्ष्म द्रव्यों के हवन के लिये हवनकुण्ड का प्रमाण कहा गया है—

एक लाख से दश लाख तक की आहुति के लिये एक हाथ से दश हाथ तक के कुण्ड से काम चल जायेगा। अब आगे दश लाख तक की आहुतियों के लिये 'लक्षैकवृद्ध्या' अर्थात् एक-एक लाख पर एक-एक हाथ बढ़ाना चाहिये। जितने लाख आहुति हो, उतने ही हाथ का कुण्ड बनाना चाहिये। यह मत शारदातिलक में भी मिलता है—

एकहस्तमितं कुण्डं लक्षहोमे विधीयते।
लक्षणां शतकं यावत् तावद् हस्तेन वर्धयेत्।।

इससे भिन्न मत का भी उल्लेख तन्त्रों में मिलता है।

मतभिन्नता का कारण—बेलफल-जैसे पदार्थों के हवन में स्थूलता रहती है, अतः उनके लिये अनुपात श्लोक ५ के अनुसार ही होगा; परन्तु तिल-यव-तण्डुल के हवन में श्लोक ६ के अनुसार कुण्ड का विधान अपेक्षित होगा। गुग्गुलु आदि द्रव्य अति सूक्ष्म होते हैं। अतः हवन सामग्री में किन द्रव्यों का प्रयोग होता है; इस पर कुण्ड का मान निर्धारित करना ही श्रेयस्कर है।

यदि समिधाओं के साथ गोमयपिण्डों का उपयोग होगा तो कुण्ड का क्षेत्रफल अधिक होना चाहिये।।६।।

एकहस्तमारभ्यादशहस्तकुण्डानामङ्गुलात्मकं मानं शार्दूलविक्रीडितवृत्तेनाह—

वेदाक्षीणि युगाग्नयः शशियुगान्यष्टाब्ध्यस्त्रीषवो-
ऽष्टाक्षावह्निरसारसाङ्कमिता नेत्रर्षयोऽक्षस्वराः।
अङ्गुल्योऽथ यवाः खमभ्रमिषवः खं पञ्च षट् सागराः
सप्ताभ्रं मुनयस्त्वमी निगदिता वेदास्त्रके बाहवः ।।७।।

बलदाभाष्यम्—अङ्कानां वामतो गतिरितिन्यायात् वेदाश्चत्वारोऽक्षिणी द्वावेवं चतुर्विंशतिः २४ युगाश्चत्वारोऽग्नयस्त्रय एवं चतुस्त्रिंशत् ३४ शशिरेको युगानि चत्वार एवमेकचत्वारिंशत् ४१ अष्टौ प्रसिद्धाः अब्धयश्चत्वारः एवमष्टचत्वारिंशत् ४८ अष्टौ प्रसिद्धा अक्षाः पञ्चैवमष्ट-पञ्चाशत् ५८ वह्नयस्त्रयो रसाः षडेवं त्रिषष्टिः ६३ रसाः षडङ्कानि च षडेवं षण्णवतिः ६९ नेत्रं द्वयं ऋषयः सप्तैवं द्विसप्ततिः ७२ अक्षाः पञ्च स्वराः सप्तैवं पञ्चसप्ततिः ७५ एता अङ्गुल्यः।

अथ तु खं शून्यं ० अभ्रं शून्यं ० इषवः पञ्च ५ षट् ६ सागराश्चत्वारः ४ सप्त ७ अभ्रं ० मुनयः सप्त ७ एते यावश्चैकादिहस्तकुण्डेषु क्षेत्रपदवाच्या बाहवो भुजा निगदिताः कथिता इत्यर्थः।

ननु हस्तस्य चतुर्विंशत्यङ्गुलात्मकत्वात् द्व्यादिगुणितं चतुर्विंशत्यङ्गुलं कथन्नाङ्गुलात्मकं द्व्यादिहस्तमानम्भवेदित्याशङ्काम्परिहरन्नाह। एकहस्तजं फलं द्व्यादिगुणितं सत् द्व्यादिहस्तजं फलं भवति यथैकहस्तकुण्डे फलं ५७६ वर्गाङ्गुलं तद्द्विगुणितं द्विहस्तजं ११५२ त्रिगुणितं त्रिहस्तजं १७२८ एवमग्रेऽपि।

एतेषाम्मूलानि क्रमेणैकादिहस्त-मानमङ्गुलात्मकं यथैकहस्तमानम् $=\sqrt{५७६} = २४$। द्विहस्तमानम् $=\sqrt{११५२} = ३४$। त्रिहस्तमानम् $=\sqrt{१७२८} = \frac{४१}{५}$ एवमग्रेऽपि। तथोक्तं वास्तवकुण्डसिद्धौ—

तत्रैकहस्तजक्षेत्रफलं जिनकृतेः समम्।
द्वित्र्यादिगुणितं तद्धि द्व्यादिहस्तोद्भवं सदा।।

फलमेकभवं द्व्यादिगुणितं द्व्यादिहस्तजम्।।
न हि द्व्यादिकराणां चाङ्गुलवर्गसमं हि तत्।।७।।

स्थूलभुजमानचक्रम्

हस्त	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
अङ्गुल	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६९	७२	७५
यव	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
क्षेत्रफल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०

सूक्ष्मभुजमानचक्रम्

हाथ	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	१६
अङ्गुल	२४	३३	४१	४८	५३	५८	६३	६७	७२	७५	९६
यव	०	७	४	०	५	६	३	७	०	७	०
यूका	०	४	४	०	२	२	७	०	०	१	०
लिक्षा	०	४	३	०	४	३	७	३	०	२	०
बालाग्र	०	३	४	०	६	२	२	५	०	०	०
रथ	०	५	५	०	४	६	०	६	०	४	०
त्र्यस्र	०	४	०	०	०	०	१	०	०	०	०

मण्डपप्रभा—अब कुण्ड के क्षेत्रफल को बताया जा रहा है। एक हाथ से लेकर दश हाथपर्यन्त क्षेत्रफल वाले कुण्डों का मान इस प्रकार होता है—

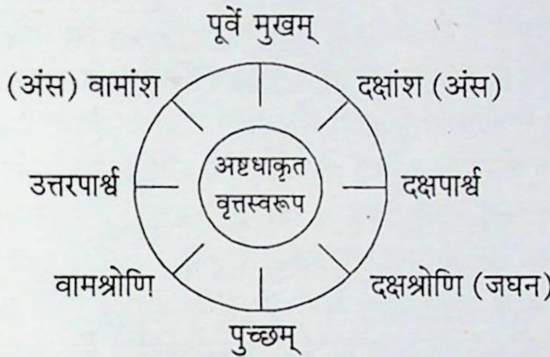
एक हाथ = २४ अङ्गुल, दो हाथ = ३४ अङ्गुल, तीन हाथ = ४१ अङ्गुल ५ यव, चार हाथ = ४८ अङ्गुल, पाँच हाथ = ५३ अङ्गुल ५ यव, छः हाथ = ५८ अङ्गुल ६ यव, सात हाथ = ६३ अङ्गुल ४ यव, आठ हाथ = ६७ अङ्गुल ७ यव, नौ हाथ = ७२ अङ्गुल तथा दस हाथ = ७५ अङ्गुल ७ यव के तुल्य लम्बाई तथा इतनी ही चौड़ाई होती है।

अब यहाँ यह शङ्का होनी स्वाभाविक है कि जब एक हाथ में चौबीस अङ्गुल होते हैं तो दो हाथ में अड़तालीस तथा तीन हाथ में बहत्तर अङ्गुल इत्यादि क्रम से होना चाहिये। परन्तु ऐसा न होकर दो हाथ में अङ्गुलादि प्रमाण सूक्ष्म रूप से ३३.७.४.४.३.४.५ तथा स्थूल रूप से चौंतीस क्यों है ? (सूक्ष्म मान भी पीछे संस्कृत टीका की सारिणी में द्रष्टव्य है)

समाधान—यतः एक हाथ कुण्ड में जितनी हवन-सामग्री समा सकती है, वह २४×२४ = ५७६ वर्गाङ्गुल होगी। क्योंकि यदि हम एक अङ्गुल लम्बे एक अङ्गुल चौड़े वर्गाकार तथा एक हाथ ऊँचे काष्ठखण्डों को पास-पास सटाकर रखें तो ऐसे काष्ठखण्ड किसी एक घन हाथ के वर्गाकार गर्त में पूर्व से पश्चिम की ओर २४-२४ के क्रम से ५७६ की सङ्ख्या में समा जायेंगे। हवन के लिये एक हाथ का मान हो गया। बस इसका द्विगुणित अर्थात् ५७६×२ = ११५२ जिस वर्गाकार कुण्ड में हो, वह दो हाथ का कुण्ड होगा तथा जिसमें त्रिगुणित अर्थात् ५७६×३ = २३०४ हो, वह तीन हाथ का कुण्ड माना जायेगा। इसी क्रम से ४-५-६-७-८-९-१० हाथों के कुण्डों का भी मान निर्धारित किया गया है। क्योंकि यदि ५७६ के विभिन्न गुणकों का वर्गमूल निकाला जाय तो वह स्थूल मान से उतना ही आता है, जितना कि इस श्लोक में बताया गया है।

जैसे यदि ५७६ का वर्गमूल निकालें तो चौबीस अङ्गुल आता है । इसी प्रकार से ११५२ का वर्गमूल सूक्ष्म रूप से अङ्गुलादि ३३.७.४.४.३.५.४ तथा स्थूल मान (Round figure) चौंतीस अङ्गुल होता है। वास्तव में तो चौंतीस वर्गमूल ११५६ सङ्ख्या का होता है। इसी प्रकार से ५७६ की त्रिगुणित सङ्ख्या १७२८ का वर्गमूल ४१ अङ्गुल ४ यव, ४ यूका, ३ लिक्षा, ४ बालाग्र तथा ५ रथरेणु होता है; जिसे स्थूल मान से ४१.५ स्वीकार किया गया है।।७।।

कुण्डस्वरूप-प्रदर्शक वृत्त



हस्त प्रमाण	एकहस्त	द्विहस्त	त्रिहस्त	चतुर्हस्त	पञ्चहस्त	षड्हस्त	सप्तहस्त	अष्टहस्त	नवहस्त	दशहस्त
मूल श्लोक में अङ्गुल-प्रमाण	वेदाक्षीणि	युगानयः	शशियुगानि	अष्टाब्धयः	त्रीषवः	अष्टाक्षाः	वह्निरसाः	रसाङ्कमिता	नेत्रर्षयः	अक्षस्वराः
यवप्रमाण	खम्	अभ्रम्	इषवः	खम्	पञ्च	षट्	सागराः	सप्त	अभ्रम्	मुनयः

कुण्डेषु योनिनिवेशनमिन्द्रवज्रयाह—

कुण्डत्रयी दक्षिणयोनिरैन्द्र्याः सौम्याग्रका स्यादितराणि पञ्च ।
पश्चाद्भगानीन्द्रदिगग्रकाणि योनिर्न कोणे न च योनिकुण्डे ।।८।।

बलदाभाष्यम्— ऐन्द्र्याः पूर्वदिशः सकाशात्कुण्डानां त्रयी दक्षिणे योनिर्यस्याः सा किं विशिष्टा सा सौम्य उत्तरस्यां अग्रकाण्यग्राणि यस्याः सार्थात्पूर्वाग्नियाम्यकुण्डेषु दक्षिण-दिश्युत्तराग्रा योनिर्विधेयैतानि कुण्डान्यप्युत्तराग्राणीति ज्ञेयम्। तथा चेतराणि निर्ऋतिपश्चिम-वायूत्तरेशनामानि यानि पञ्चकुण्डानि पश्चात्पश्चिमायां भगानि भगाकृतयो येषां तानि किंविशिष्टा-नीन्द्रदिश्यग्राण्यग्रकाणि येषां तान्यर्थादुक्तकुण्डेषु पश्चिमदिशि पूर्वाग्रा योनिर्विधेया तानि कुण्डान्यपि पूर्वाग्राणीति ज्ञेयम्। तथा च कोणे कुण्डस्य कोणे योनिर्न कार्येति। तथोक्तं स्वायम्भुवे—

प्रागग्नियाम्यकुण्डानां प्रोक्ता योनिरुदङ्मुखी।
पूर्वामुखाः स्थिताः शेषा यथाशोभं व्यवस्थिता।। इति ।

त्रैलोक्यसारे— नवमस्यापि कुण्डस्य योनिर्दक्षदले स्थिता।। इति ।

अन्यत्र— नार्पयेत्कुण्डकोणेषु योनितां तन्त्रवित्तम।
योनिकुण्डे तथा योनिं पद्मे नाभिं विवर्जयेत्।। इति।।८।।

मण्डपप्रभा— अब कुण्डों में योनि किस दिशा में बनायी जाय, यह बताया जा रहा है—

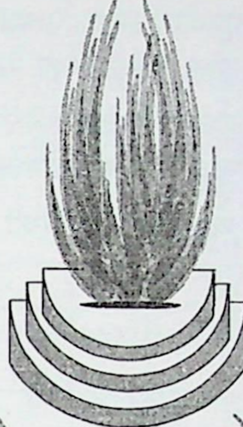
पूर्व, आग्नेय तथा दक्षिण खण्ड में जो कुण्ड बनाये जाँय, उनमें योनि दक्षिण दिशा में लगानी चाहिये तथा योन्याग्र उत्तर दिशा को होगा। अब शेष नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर तथा ईशान के इन पाँच कुण्डों में योनि पश्चिम दिशा में लगानी चाहिये तथा उसका अग्र पूर्व दिशा में होता है। जो नवाँ आचार्यकुण्ड है, वह ईशान तथा पूर्व दिशा के मध्य में बनता है। उसमें योनि दक्षिण की ओर तथा अग्र उत्तर की ओर रहेगा। योनिकुण्ड में योनि नहीं लगानी चाहिये; क्योंकि वह पूरा कुण्ड ही योन्याकार होता है। परन्तु उस योन्याकार कुण्ड का अग्र उत्तर में रखना चाहिये तथा होता कुण्ड के दक्षिण दिशा में बैठकर हवन करेगा। इसी प्रकार किसी भी कुण्ड की भुजा में ही योनि बनानी चाहिये। दो भुजाओं के कोण में योनि कथमपि नहीं बनानी चाहिये, यही 'योनिर्न कोणे' का अभिप्राय है। (परन्तु एक हिन्दी टीकाकार ने 'योनिर्न कोणे न च योनिकुण्डे' का अर्थ इस प्रकार किया है— 'और त्रिकोण तथा योनिकुण्ड में योनि नहीं लगावे। जो कि असमीचीन है; क्योंकि त्रिकोण कुण्ड में तो योनि लगायी जाती है, किन्तु किसी भी कुण्ड के कोने में नहीं) पूर्वाग्र योनि के कुण्डों में होता पश्चिम दिशा में बैठकर पूर्वाभिमुख होकर हवन करते हैं तथा उत्तराग्र योनि वाले कुण्डों में होता दक्षिण दिशा की ओर पीठ करके तथा पूर्वाभिमुख होकर बैठते हैं।

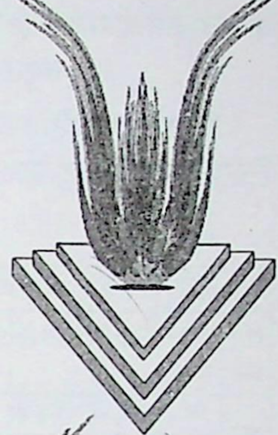
योनि-निवेशन की आवश्यकता—तान्त्रिक यज्ञों में योनि बनाने की परम्परा है तथा (कुण्ड में) योनि न होने को दोष माना गया है। इसीलिये कहा भी गया है—'भार्याविनाशनं प्रोक्तं कुण्डे योनिविना कृते'। कहीं-कहीं यह भी बताया गया है कि योन्यभाव में अपस्मार तथा भगन्दर रोग होता है एवं मानहीनता के कारण दरिद्रता होती है। मध्य मेखला में योनि के पीछे छिद्र बनाया जाता है, जिसमें लम्बी-पतली-गोल लकड़ी लगा दी जाती है। योनि बन जाने पर उसके ऊपर दोनों तरफ मिट्टी के दो गोल पिण्ड रख दिये जाते हैं; जो उत्तर तथा दक्षिण में रहते हैं। उन दोनों के मध्य में एक अङ्गुल ऊँचा लिङ्ग बनाया जाता है।

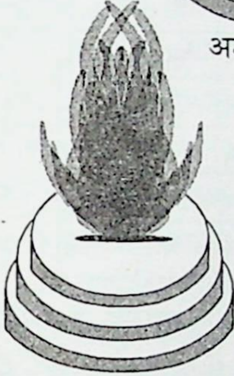
वैदिक पद्धति के योनिरहित कुण्ड—वैदिक सम्प्रदाय वाले जन योनिरहित कुण्ड बनाते हैं। उन्होंने योनि के अभाव को दोष नहीं माना है। अतः उक्त पद्धतियों में योनि न लगाने पर कोई क्षति नहीं है; परन्तु जो यज्ञ होमादि तान्त्रिक, पौराणिक आदि रीति से होते हैं, उनमें योनि-निवेशन आवश्यक है।।८।।

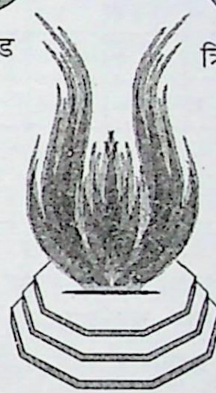
वैदिक पद्धति के योनिरहितकुण्ड


योनि कुण्ड

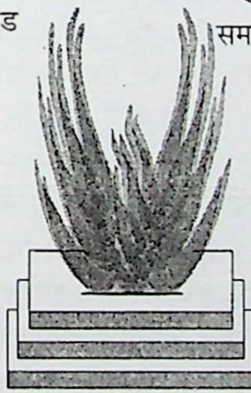

अर्द्धचन्द्र कुण्ड


त्रिकोण कुण्ड


वृत्त कुण्ड


सम अष्टास्र कुण्ड


समषडस्र कुण्ड


चतुष्कोण कुण्ड


पद्म कुण्ड

सर्वकुण्डप्रकृतिभूतं चतुरस्रं शालिन्याह—

द्विघ्नव्यासं तुर्यचिह्नं सपाशं सूत्रं शङ्कौ पश्चिमे पूर्वगेऽपि।
दत्वा कर्षेत्कोणयोः पाशतुर्ये स्यादेवं वा वेदकोणं समानम्॥९॥

बलदाभाष्यम्—द्विघ्नव्यासं द्विगुणितक्षेत्रसमं तुर्यं चतुर्थांशं चिह्नमङ्कं यस्मिन्तत् सपाशं पाशद्वययुक्तं सूत्रं डोरकं कृत्वेति शेषः। पश्चिमे पूर्वगेऽपि शब्दाद्वृत्तपालौ यच्छङ्कुद्वयं

तत्र दत्वा पाशाभ्यां तुर्ये चतुर्विभागान्ते धृत्वेति शेषः। कोणयोरग्निनैर्ऋत्ययोरीशानवाय्वोर्वा कर्षेदेवं कृते समानं वेदकोणं चतुष्कोणं स्यात्। उक्तञ्च—

चतुरस्रमिदं प्रोक्तं सर्वकुण्डेष्वयं विधिः। इति।

विदुषामुपकारायैकहस्तमारभ्य आदर्शहस्तकुण्डनिर्माणाय चतुरस्रसारिण्यां व्यासादिकं लिखितमनया व्यासादिकमवगम्य कुण्डरचना सुखेन कार्येति।।९।।

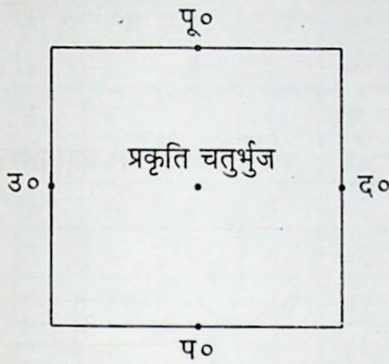
चतुरस्रकुण्डसारिणी

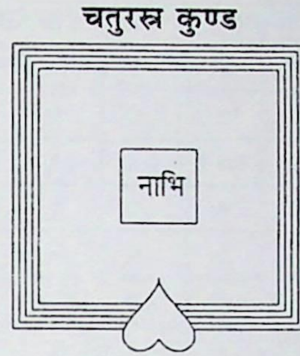
हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षे० फ०	वर्गांगुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अ	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
व्यासार्ध	अं	१२	१७	२०	२४	२६	२९	३१	३३	३६	३७
	य	०	०	६	०	६	३	६	३	०	७
सूत्र	हा	२	२	३	४	४	४	५	५	६	६
	अं	८	२०	१२	०	१२	२२	७	१४	०	८

मण्डपप्रभा—वृत्तव्यास को द्विगुणित करें। तात्पर्य यह है कि एक हाथ का वृत्तव्यास २४ अङ्गुल होता है। उसे दूना करें तो २४×२ = ४८ हुए। इतने अङ्गुल-प्रमाण का सूत्र लें। फिर पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण तथा मध्य भागों में चिह्न लगा कर वहाँ कीलें गाड़ दें। सूत्र के चार भाग करें तथा उसके सिरों पर पाश बना दें। अब उस सूत्र को पूर्व एवं पश्चिम दिशा की कीलों में लगा दें। फिर अग्निकोण की ओर खींचें तब पूर्व से अग्निकोण की ओर खींचने पर बारह अङ्गुल पर अग्निकोण को चिह्नित करें। तत्पश्चात् पश्चिम दिशा में आकर उसी सूत्र को नैर्ऋत्य कोण में खींचें तथा वहाँ चिह्न लगा दें। यह चिह्न भी बारह अङ्गुल पर लगेगा। फिर उसी सूत्र को वायव्य कोण में खींचें तो वायव्य कोण में चिह्न करें। अन्त में ईशान कोण का भी निर्धारण करने से एक हाथ का सम चतुष्कोण बन जायेगा। चतुरस्रकुण्ड को ही समस्त कुण्डों का प्रकृतिभूत माना गया है; जैसा कि कहा भी गया है—

चतुरस्रमिदं प्रोक्तं सर्वकुण्डेष्वयं विधिः।।९।।

वक्तव्य—कुण्डनिर्माण का कार्य दो प्रकार से होता है। एक तो चतुरस्र बनाकर, फिर उसी में से सभी आकार के कुण्डों का निर्माण किया जाता है। अनेक ग्रन्थ इसी सिद्धान्त पर रचे गये हैं। यह ग्रन्थ भी उन्हीं में से एक है। दूसरे सिद्धान्त में वर्तुल को प्रकृति मानकर उसी से कुण्डरचना का विधान बताया गया है। कुण्डार्क नामक ग्रन्थ में सभी कुण्डों का मूल (प्रकृतिभूत) वृत्त को ही माना गया है।





योनिकुण्डमिन्द्रवज्रयाह—

क्षेत्रे जिनांशे पुरतः शरांशान्संवर्ध्य च स्वीयरदांशयुक्तान्।
कर्णाङ्घ्रिमानेन लिखेन्दुखण्डे प्रत्यक् पुरोऽङ्काद्गुणतो भगाभम् ॥१०॥

बलदाभाष्यम्—जिनांश्चतुर्विंशतिः 'विंशत्याद्याः सदैकत्व' इत्यमरः। अंशा भागा यस्य तस्मिन् चतुर्विंशतिधा विभक्त इत्यर्थः। क्षेत्रे कर्त्तव्यकुण्डस्य क्षेत्रे शरांशान् जिनांशानां पञ्चभागान् किंविशिष्टान् स्वीयस्य पञ्चभागस्य ये रदांशास्तैर्युक्तान् पुरतोऽग्रतो योनिकुण्ड-स्योत्तराग्रत्वादुत्तरबिन्दुत इत्यर्थः, संवर्ध्य वर्धयित्वा च पुनः कर्णाङ्घ्रिमानेन कर्णरेखायाश्चतुर्थांशमितेन सूत्रेण कर्कटकेन वा हे विद्वन् प्रत्यक् वर्धमानदिक्तः पश्चिमदिश्यर्थाद्विरुद्धदिशीन्दुखण्डे वृत्तार्द्धद्वयं लिख। पुरोऽङ्काद्वर्धिताग्रचिह्नात्पूर्वापरसूत्रलग्नवृत्तार्धं यावद्गुणतः सूत्रदानाद्भगाभं भगाकृतिकुण्डं स्यात्। विदुषामुपकारायैकहस्तमारभ्यादशहस्तयोनिकुण्डनिर्माणाय वर्धनादिक-मानीय योनिकुण्डसारिण्यां मया लिखितमनयेष्टयोनिकुण्डस्य वर्धनादिकं ज्ञात्वा तद्रचना कार्येति॥१०॥

योनिकुण्डसारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
फल	वर्गा-ङ्गुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं.	२४	३४	४१	४२	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य.	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
व्यासार्द्ध	अं.	८	१२	१४	१७	१८	२०	२२	२३	२५	२६
	य.	३	०	५	०	७	६	३	५	३	६
	यू.	७	१	५	०	५	१	४	१	५	४
व्यास	अं.	१६	२४	२९	३४	३७	४१	४४	४७	५०	५३
	य.	७	०	३	०	७	४	७	२	७	५
	यू.	६	२	३	०	३	२	१	२	२	१

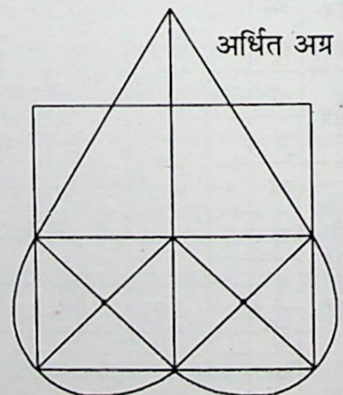
वर्धन	अं.	५	७	८	१०	११	१२	१३	१४	१५	१६
	य.	१	२	७	२	४	५	४	२	३	२
	यू.	२	५	४	४	१	१	७	६	६	२
बृहत् लम्ब	अं.	१७	२४	२९	३४	३८	४१	४५	४७	५१	५४
	य.	१	२	६	२	२	७	२	६	३	१
	यू.	२	५	०	४	५	४	७	२	६	६
लघु लम्ब	अं.	१२	१७	२०	२४	२६	२९	३१	३३	३६	३७
	य.	०	०	६	०	६	३	६	३	०	७
	यू.	०	०	४	०	४	०	०	४	०	४

मण्डपप्रभा—सर्वप्रथम चौबीस अङ्गुल का चतुरस्र (श्लोक ९ के अनुसार) बनायें; फिर उसके चार सम भाग करें अर्थात् पूर्व से पश्चिम तक तथा उत्तर से दक्षिण तक ठीक मध्य से होते हुए दो रेखाएँ खींच दें तो चार भाग समान रूप से हो जायेंगे। अब उन २४ अङ्गुल में से ५ अङ्गुल तथा उसका बत्तीसवाँ भाग अर्थात् $\frac{५}{३२}$ अङ्गुल अर्थात् १ यव तथा २ यूका और मिलायें। इस प्रकार कुल ५ अङ्गुल १ यव तथा २ यूका को मध्य से पूर्व की ओर जाने वाली रेखा के अग्र में और अधिक बढ़ा दें। इस प्रकार वह रेखा मध्य बिन्दु से १२ अङ्गुल+५ अङ्गुल १ यव तथा २ यूका = १७.१.२ प्रमाण की होगी। अब चतुरस्र में मध्य से पश्चिम दिशा की ओर जो दो खण्ड हैं, उनके कोनों को मिला कर दो-दो रेखायें देकर उनका मध्य भाग निर्धारित करें तथा उस मध्य से वायव्य कोण तथा नैर्ऋत्य कोण की ओर दो अर्ध वर्तुल बनायें, जिससे कुण्ड का आकार योनि के समान हो जायेगा। फिर कुण्ड का विधिवत् निर्माण कर लें। (यह कार्य चार अवस्थाओं में होगा, जो कि चित्रों में द्रष्टव्य है)।।१०।।

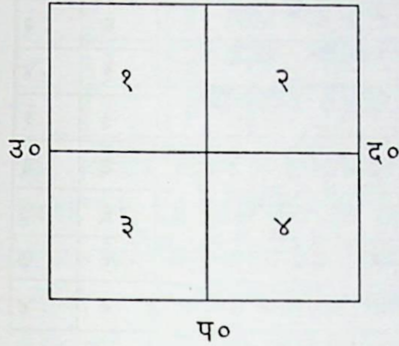
४. योनिकुण्डम् मेखलासहितम्



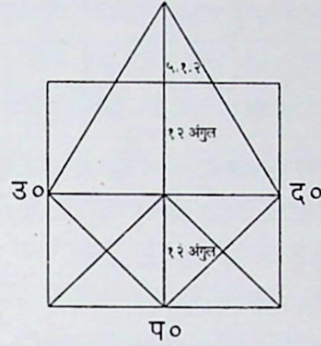
३. योन्याकृतिकरण



१. चतुरस्र के चार समान भाग



२. अग्रवर्धन एवं पश्चिमी दो चतुष्कोणों का मध्य साधन



वसन्तमालिकयार्धचन्द्रमाह—

स्वशतांशयुतेषु भगहीनस्वधरित्रीमितकर्कटेन मध्यात् ।
कृतवृत्तदलेऽग्रतश्च जीवां विदधात्विन्दुदलस्य साधुसिद्ध्यै ॥११॥

बलदाभाष्यम्—स्वस्य शतांशेन शतभागेन युतो य इषुभागः क्षेत्रस्य पञ्चमांशस्तेन हीनोना या स्वधरित्री क्षेत्रमितिस्तन्मितकर्कटेन व्यासार्धेन मध्यात्केन्द्रबिन्दुतः। किं केन्द्रमित्यत आह चतुरस्रस्य प्रकृतिभूतत्वात्तन्मध्यगताया दक्षिणोत्तररेखायाः मध्यबिन्दुवत् उत्तरदिक्स्थमर्धार्धबिन्दुरेव केन्द्रमतो दक्षिणदिशि कृतवृत्तदले रचितवृत्तार्धे साधु यथार्थमिन्दुदलस्यार्धचन्द्रस्य सिद्ध्यै अग्रतो वर्धनदिशि जीवां व्यासतुल्यां पूर्णज्यां विदधातु करोतु विद्वानिति शेषः। विदुषामुपकारायैकहस्तमारभ्यादशहस्तार्धचन्द्रनिर्माणाय व्यासादिकमानीयार्धचन्द्रकुण्डसारिण्यां लिखितं मयानयेष्टकुण्डस्य व्यासादिकं ज्ञात्वा तद्रचना कार्येति।।११।।

अर्धचन्द्रकुण्डसारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षेत्र-फल	वर्गाङ्गुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
व्यासार्द्ध	अं	१९	२७	३३	३८	४२	४६	५०	५३	५७	६०
	य	१	१	१	२	६	७	५	२	३	४
	यू	१	०	५	३	२	०	३	७	५	३
	ली	५	३	७	३	६	३	०	३	१	०
	वा	७	६	१	६	०	७	५	५	४	७

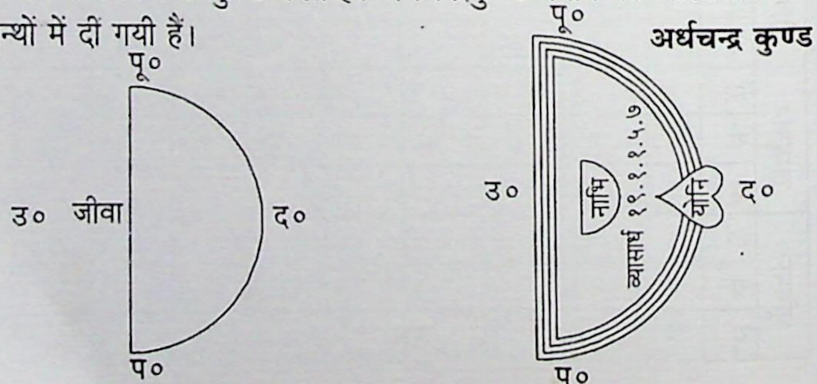
व्यास	अं	३८	५४	६६	७६	८५	९३	१०१	१०६	११४	१२१
	य	२	२	३	४	४	६	२	५	७	०
	यू	३	०	३	६	५	०	६	६	२	६
	ली	३	७	६	७	४	७	१	७	३	१
	वा	६	४	२	४	०	६	२	२	०	६

मण्डपप्रभा—सर्वप्रथम चौबीस अङ्गुलात्मक समचतुरस्त्र का निर्माण कीजिये, फिर चतुरस्त्र के मध्य बिन्दु पर कर्काटक (परकाल) का एक शङ्कु स्थिर कर तथा उसकी दूसरी टाँग को उन्नीस अङ्गुल, एक यव, एक यूका, पाँच लिक्षा तथा सात बालाग्र प्रसरित करें अर्थात् उसका माप १९.१.१.५.७ ग्रहण कर एक अर्धवर्तुल का निर्माण करें। यह अर्धवर्तुल मध्य से पूर्व-दक्षिण-पश्चिम दिशाओं में बनाना चाहिये। बस इतने से ही श्रेष्ठ अर्धचन्द्र कुण्ड बन जाता है। इसमें पूर्व से पश्चिम एक रेखा देने से उस अर्धवर्तुल (धनुष) की जीवा (ज्या) बन जाती है। यही श्लोक का भावार्थ है।

मूल श्लोक का अर्थ इस प्रकार है—प्रकृतिक्षेत्र चतुरस्त्र का पाँचवाँ भाग अर्थात् $\frac{२४}{५}$ = चार अङ्गुल, छः यव, तीन यूका, एक लिक्षा तथा ५ बालाग्र में इसी का शतांश (१००वाँ भाग) अर्थात् $\frac{२४}{५}$ का $\frac{१}{१००}$ = ०.०.३.०.४ अङ्गुलादि प्रमाण को जोड़ दें। यह अङ्गुलादि ४.६.६.२.१ होता है, जिसे अङ्गुल-प्रमाण २४ (चौबीस) में से हीन कर दें तथा अङ्गुलादि १९.१.१.५.७ शेष रहता है। इतने प्रमाण का कर्काटक प्रसरित कर अथवा इतने प्रमाण के सूत्र से मध्य से दक्षिण की ओर अर्धवृत्त बनाते हैं। अर्धवृत्त के दोनों अग्रों में पूर्व से पश्चिम तक सूत्र देने से अर्ध चन्द्राकार कुण्ड की आकृति स्पष्ट हो जाती है।।११।।

विशेष—प्राय: मण्डप के नौ भागों में कुण्ड बनाने पर मण्डप के मध्य बिन्दु से तीन अन्य वृत्ताकार कुण्डों, जो कि दक्षिण, पश्चिम एवं उत्तर में बनते हैं, में समान अन्तर नहीं रह पाता है। अत: यह त्रुटि दूर करने के लिये मध्य वेदी से कुण्डमेखला तक का अन्तर कितना है, यह देख लें तथा उसे चिह्नित कर दें तो सुविधा रहती है। पश्चिम में वृत्ताकार तथा उत्तर में पद्मकुण्ड बनते हैं। अर्धचन्द्रकुण्ड बनाने की और विधियाँ भी अन्य ग्रन्थों में दीं गयी हैं।

अर्धचन्द्र कुण्ड



त्रिभुजं वृत्तञ्च शार्दूलविक्रीडितेनाह—

वह्न्यंशं पुरतो निधाय च पुनः श्रोण्योश्चतुर्थांशकं
चिह्नेषु त्रिषु सूत्रदानत इदं स्यात्त्र्यस्त्रि कष्टोज्झितम्।
विश्वांशैः स्वजिनांशकेन सहितैः क्षेत्रे जिनांशे कृते
व्यासार्धेन मितेन मण्डलमिदं स्याद्वृत्तसंज्ञं शुभम्॥१२॥

बलदाभाष्यम्—पुरतोऽग्रतः कस्येत्यत आह चतुरस्रस्य सर्वेषां कुण्डानां प्रकृतिभूतत्वात् त्रिकोणस्य पूर्वाभिमुखस्थितत्वाच्च चतुरस्रमध्यगतायाः पूर्वापररेखायाः पूर्वविन्दोरित्यर्थः, वह्न्यंशं क्षेत्रस्य तृतीयांशं निधाय संयोज्य वर्धयित्वेति यावत्। पुनश्च श्रोण्योः फलकयोः (कटोना श्रोणिपलकमित्यमरः)। पश्चिमबिन्दुस्थदक्षिणोत्तररेखाया उभयपार्श्वयोरित्यर्थः। चतुर्थांशकं क्षेत्रस्य चतुर्भागं निधाय त्रिषु चिह्नेषु त्रिष्वपि दानाग्रचिह्नेषु सूत्रदानतो रेखाकरणेनेदं कष्टोज्झितं सुखसाध्यमेतेन स्थूलमिदमिति सूचितं सूक्ष्मार्थं वास्तवकुण्डसिद्धिर्विलोक्येति। त्र्यस्त्रि त्रिकोणं स्यादत्र विदुषामुपकारायैकहस्तमारभ्यादशहस्तत्रिकोणनिर्माणाय फलज्ञानाय च त्रिकोण-सारिण्यां वर्धमानादिकमानीय मया लिखितमनया सर्वं ज्ञात्वा सुखेन कुण्डरचना कार्येति।

त्रिकोणसारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षे० फ०	वर्गाङ्गुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
अग्रवृद्धि	अं	८	११	१३	१६	१७	१९	२१	२२	२४	२५
	य	०	२	७	०	७	५	१	२	०	२
	यू	०	५	०	०	०	०	२	३	०	३
श्रोणिवृद्धि	अं	६	८	१०	१२	१३	१४	१५	१६	१८	१९
	य	०	४	२	०	३	५	७	६	०	०
	यू	०	०	०	०	२	४	०	०	०	०
लम्बमान	अं	३२	४५	५४	६४	७१	७८	८४	८९	९६	१०१
	य	०	२	७	०	४	३	५	१	०	१
	यू	०	५	०	०	०	०	२	३	०	३
भूमिमान	अं	३६	५१	६२	७२	८०	८८	९५	१००	१०८	११३
	य	०	०	१	०	३	१	२	३	०	७
	यू	०	०	०	०	४	०	०	०	०	०

जिनांशे कृते चतुर्विंशतिधा विभक्ते क्षेत्रे स्वस्य जिनांशकेन चतुर्विंशत्यंशकेन सहितैर्युक्तैर्विश्वांशैस्त्रयोदशभागैर्मितेन तत्तुल्येन व्यासार्धेन मण्डलं विरचयेदिति शेषः। इदं शुभं शुभप्रदं वृत्तसंज्ञं कुण्डं स्यात्। अत्रापि लाघवायैकहस्तमारभ्यादशहस्तवृत्तकुण्डनिर्माणाय वृत्तकुण्डसारिण्यां व्यासादिकमानीय मया लिखितमनयेष्टकुण्डस्य व्यासादिकं ज्ञात्वा तद्रचना सुखेन कर्त्तुं शक्येति।।१२।।

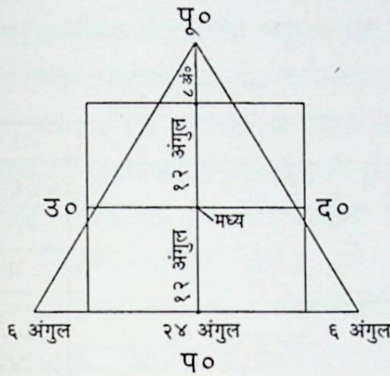
वृत्तकुण्डसारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षे० फ०	वर्गाङ्गुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
व्यासार्द्ध	अं	१३	१९	२३	२७	३०	३३	३५	३७	४०	४२
	य	४	१	३	०	२	१	६	५	५	६
	यू	२	३	७	५	०	१	४	६	०	३
	ली	५	५	१	२	३	३	७	६	०	६
	वा	३	१	०	५	५	०	७	७	०	७
व्यास	अं	२७	३८	४६	५४	६०	६६	७१	७५	८१	८५
	य	०	२	७	१	४	२	५	३	२	४
	यू	५	७	६	२	०	२	१	५	०	७
	ली	२	२	२	५	७	६	७	५	०	५
	वा	६	२	०	२	२	०	६	६	०	६

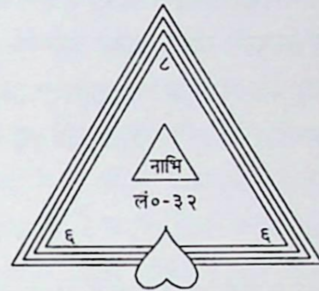
मण्डपप्रभा—इस एक ही शार्दूलविक्रीडित छन्द में त्रिकोण तथा वृत्तकुण्ड निर्माण की प्रक्रिया दर्शायी गयी है।

त्रिकोण कुण्ड—यह कुण्ड नवकुण्डीपक्ष में नैर्ऋत्य कोण के खण्ड में बनता है। उस खण्ड के मध्य में चौबीस अङ्गुल व्यास का चतुरस्र बना लें; फिर उस चतुरस्र के मध्य केन्द्र में पश्चिम से पूर्व की ओर एक बारह अङ्गुल की रेखा खींचे; फिर चतुरस्र की पूर्वी सीमा से उस रेखा को पूर्व की ओर आठ अङ्गुल (तृतीयांश= $\frac{२४}{३}$ = ८ अङ्गुल) बढ़ा दें। अब प्रकृतिक्षेत्र (चौबीस अङ्गुल) का चतुर्थांश अर्थात् छः अङ्गुल चतुरस्र की दोनों श्रोणि में अलग बढ़ा दें; फिर बढ़े हुए भाग में दोनों ओर सूत्र देने से त्रिकोणाकृति स्पष्ट हो जाती है। इन सूत्रों के देने से त्रिकोण कुण्ड विना किसी कष्ट के त्र्यस्र बन जाता है।

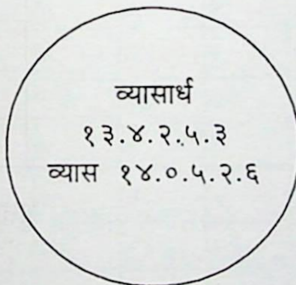
अब यदि कुण्ड दो हाथ परिमाण का बनाना हो तो ३४ अङ्गुल का वृत्त बनाकर मध्य के लम्ब में आठ अङ्गुल के स्थान पर $\frac{३४}{३}$ अङ्गुल अर्थात् ११ अङ्गुल २ यव तथा ५ यूका बढ़ायें एवं दोनों श्रोणि की तरफ साढ़े आठ अङ्गुल बढ़ायें (दोनों श्रोणि का परिचय इसी अध्याय के सातवें श्लोक की टीका में देखें)।



त्रिकोणकुण्डस्वरूपम्



वृत्तकुण्ड-निर्माण-विधि—यह पश्चिमी खण्ड के मध्य में बनता है। सर्वप्रथम मध्य भाग में चौबीस अङ्गुल का सम चतुरस्र बनायें, फिर तेरह अङ्गुल में उसका चौबीसवाँ भाग जोड़कर अर्थात् १३ अङ्गुल+अङ्गुलादि ०.४.२.५.३ = १३.४.२.५.३ का परकाल (कर्काटक) या सूत्र लेकर चारो ओर भ्रामण कराने से वृत्त बन जाता है। उसी वृत्त से कुण्ड का निर्माण कर लेना चाहिये।।१२।।



वृत्तकुण्डस्वरूपम्



स्रग्धरया षडस्रमाह—

> **भक्ते क्षेत्रे जिनांशैर्धृतिमितलवकैः स्वाक्षिशैलांशयुक्तैः**
> **व्यासार्धान्मण्डले तन्मितधृतगुणके कर्कटे चेन्दुदिक्तः ।**
> **षट्चिह्नेषु प्रदद्याद्रसमितगुणकानेकमेकन्तु हित्वा**
> **नाशे सन्ध्यर्त्तुदोषामपि च वृतिकृतेर्नेत्ररम्यं षडस्रम् ।।१३।।**

बलदाभाष्यम्—जिनांशैर्भक्ते चतुर्विंशतिधा विभक्ते क्षेत्रे स्वस्याक्षिशैलांशैर्द्वि-सप्तत्यंशैर्युक्तैः सहितैर्धृतिमितलवकैर्जिनांशानामष्टादशभागैर्व्यासार्धान्मण्डले वृत्ते कृत इति शेषः।

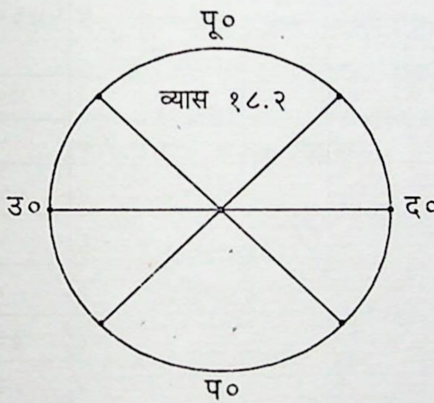
तन्मितधृतगुणके व्यासार्धतुल्यगृहीतडोरके कर्कटे च गृहीते इन्दुदिक्त उत्तरदिशः सकाशात् षट्चिह्नेषु सम्पादितेष्विति शेषः। एतदुक्तं भवति कर्काटकस्यैकमग्रमुत्तरदिशि धृत्वा वृत्तोपरि भ्रामणेन तस्य समानाः षड्विभागा भवेयुस्तत्रोत्तरदिश एवैकमेकमेकैकं चिह्नं हित्वा त्यक्त्वा रसमितगुणकान् षट्सङ्ख्याकपूर्णज्यासूत्रान् प्रदद्यात्। अनन्तरं सन्धौ भवः सन्ध्यः दिगादिभ्यो यदिति यत्प्रत्यये कृते यचि भमित्यनेन भसंज्ञा कृते यस्येति चेत्यनेनेकारलोपे कृते सन्ध्य इति पदं सिद्धम्। तत्र ये ऋतवः षड्दोषो भुजास्तेषां अपि च वृत्तेर्वृत्तस्य कृतिरुपकरणं तस्यापि नाशे मार्जने कृते नेत्ररम्यं नेत्राह्लादकरं षडस्त्रं षट्कोणं स्यात्। अत्र विदुषामुपकारायैकहस्तमारभ्यादशहस्तषडस्त्रकुण्डनिर्माणाय व्यासादिकमानीय प्रथमषडस्त्रकुण्डसारिण्यां लिखितमस्तीत्यनया व्यासादिकमवगम्य सुखेन कुण्डरचना कार्येति।।१३।।

विषमषडस्त्रकुण्डसारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षे० फ०	वर्गाङ्गुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
व्यासार्द्ध	अं	१८	२५	३१	३६	४०	४४	४८	५०	५४	५७
	य	२	६	५	४	६	५	२	६	६	५
	यू	०	६	१	०	१	२	२	६	०	४
लघुभूमि	अं	१०	१४	१८	२१	२४	२५	२७	२९	३१	३३
	य	४	७	२	०	३	६	७	२	४	२
	यू	२	३	१	४	०	२	०	६	७	३
लघुलम्ब	अं	९	१२	१५	१८	२०	२२	२४	२५	२७	२८
	य	१	७	६	२	३	२	१	३	३	६
	यू	०	३	४	०	०	५	१	३	०	६
बृहत् भूमि	अं	३१	४४	५४	६३	७३	७७	८३	८८	९४	९९
	य	४	६	६	१	१	२	५	०	६	७
	यू	७	१	४	६	०	७	०	४	५	३
बृहत् लम्ब	अं	२७	३८	४७	५४	६१	६७	७२	७६	८२	८६
	य	३	६	३	६	१	०	३	२	१	४
	यू	०	१	६	०	२	०	३	१	०	२

मण्डपप्रभा—षडस्र कोण मण्डप के वायव्य खण्ड में बनाया जाता है। इस छन्द में इसकी निर्माण-विधि कही जा रही है।

विषम षडस्र कुण्ड की निर्माणविधि— विषम षडस्र कुण्ड के निर्माण में सर्वप्रथम वृत्त बनाना पड़ता है। वृत्त-निर्माण के लिये अट्ठारह अङ्गुल का कर्काटक (परकाल) लेकर उस अट्ठारह अङ्गुल के आयाम में उसका बहत्तरवाँ भाग अर्थात् $\frac{१८}{७२} = \frac{१}{४}$ अङ्गुल = दो यव और मिलायें; अतः १८ अङ्गुल २ यव का अर्ध व्यासमान लेकर उस परकाल को या शङ्कु के सब ओर इतने प्रमाण के सूत्र को घुमाकर वृत्त बनायें; फिर उस वृत्त पर उत्तर दिशा से समान माप पर वृत्त की परिधि रेखा पर छः चिह्न बना दें तो विषम षडस्र का प्रारूप बन जाता है। फिर उसी वृत्त में तीसरे, फिर उससे तीसरे चिह्नों पर सूत्र दें। बीच के एक-एक चिह्न का परित्याग कर दें तथा सन्धियों की रेखाओं को मिटा दें तो कुण्ड का प्रारूप स्पष्ट होता है, जिसे खनन कर कुण्ड बना लें। विषम षडस्रसारिणी से दो-चार आदि हाथों के प्रमाण वाले सूत्रों को ग्रहण करना चाहिये।।१३।।



विषमषडस्रकुण्डस्वरूपम्



स्रग्धरयान्यत्षडस्रमाह—

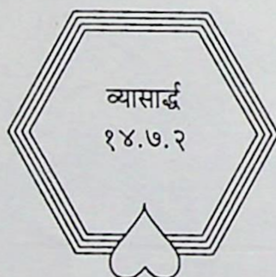
अथवा जिनभक्तकुण्डमानात्तिथिभागैः स्वस्वभूपभागहीनैः ।
मितकर्कटोद्भवे तु वृत्ते विधुदिक्तः समषड्भुजैः षडस्रम् ॥१४॥

बलदाभाष्यम्—अथवा प्रकारान्तरेण जिनैश्चतुर्विंशत्या विभक्तं यत्कुण्डमानं क्षेत्रप्रमाणं तस्मात् तिथिभागैः जिनांशानां पञ्चदशभागैः किंविशिष्टैः स्वस्य खभूपभागैः षष्ट्यधिकशततमांशैर्हीनै रहितैस्तन्मितकर्कटोद्भवे तत्तुल्यव्यासार्धोत्पन्ने वृत्ते तेनैव कर्काटकेनोत्तरविन्दुतः समषड्भागे कृते वृत्त इति शेषः, तु पुनः विधुदिक्तः सौम्यदिशः सकाशात् समषड्भुजैः समानर्त्तुभुजैर्द्वितीयं षडस्रं स्यात्। अत्र विदुषामुपकारायैकहस्तमारभ्यादशहस्तकुण्डनिर्माणाय व्यासार्धादिकमानीय द्वितीयषडस्रकुण्डसारिण्यां मया लिखितमनयेष्टकुण्डस्य व्यासार्धादिकमवगम्य द्वितीयषडस्रकुण्डस्य रचना कार्येति।।१४।।

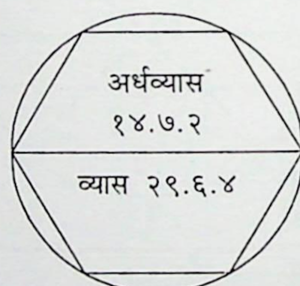
समषडस्त्रकुण्डसारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षे० फ०	वर्गाङ्गुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
व्यासार्द्ध	अं	१४	२१	२५	२९	३३	३६	३९	४१	४४	४७
	य	७	०	६	६	२	३	३	३	५	०
	यू	२	७	६	४	३	७	४	३	६	७
कुमुखयो	अं	२२	३१	३८	४५	४९	५४	५९	६२	६७	७०
	य	२	५	६	१	७	५	१	१	०	५
	यू	७	३	१	६	५	६	२	१	५	३
लम्बमान	अं	१२	१८	२२	२५	२८	३१	३४	३५	३८	४०
	य	७	२	३	६	६	४	१	७	५	६
	यू	२	३	१	४	६	६	२	०	५	३

समभुजषडस्त्रकुण्डस्वरूपम्



षडस्त्र कुण्ड का पूर्वरूप



मण्डपप्रभा—चौबीस अङ्गुल का प्रकृति चतुरस्त्र है। उसमें से चौदह अङ्गुल, सात यव तथा दो यूका (१४.७.२) का परकाल फैलाकर एक वृत्त बना दें। उसमें उत्तर बिन्दु से तीन चिह्न पूर्वी अर्धवृत्त में तथा दक्षिण बिन्दु से प्रारम्भ कर तीन चिह्न पश्चिमी अर्धवृत्त में बना दें। तात्पर्य यह है कि चौबीस अङ्गुल में से उसमें से तिथिमान (पन्द्रह) को लें तथा १५ का एक सौ साठवाँ भाग उसमें और घटा दें तो १४.७.२ शेष रहता है। बस इतने ही अर्धव्यास का वृत्त बनाना चाहिये और उत्तर दिशा से मिलाना प्रारम्भ करें, जिससे पाँचवीं भुजा में पश्चिम दिशा में योनि बन सके। क्योंकि योनि न तो भुजकोण में बनती है और न ही योनि का निर्माण दिक्कोण में करना चाहिये। इसीलिये उत्तर दिशा से वृत्त के सम षट् भाग करना आवश्यक है। एक हाथ से अधिक के सूत्र हेतु सारिणी देखें।।१४।।

पद्मकुण्डं शार्दूलविक्रीडितवृत्तेनाह—

अष्टांशाच्च यतश्च वृत्तशरके यत्रादिमं कर्णिका
युग्मे षोडशकेशराणि चरमे स्वाष्टत्रिभागोनिते।
भक्ते षोडशधा शरान्तरधृते स्युः कर्कटेऽष्टौ छदाः
सर्वांस्तान्खनकर्णिकां त्यज निजायामौच्चकां स्यात्कजम् ॥१५॥

बलदाभाष्यम्—यतो यस्मात् चकाराच्चतुरस्रमध्यात्। अष्टांशात्क्षेत्रस्याष्टमांशात् चकारादेकादिभागवृद्ध्या वृत्तानां शरकं पञ्चकं तस्मिन् निर्मित इति शेषः। यत्र यस्मिन् वृत्तपञ्चके आदिमं प्रथमं वृत्तं कर्णिकाकमलबीजकोशस्य कर्णिकेत्यभिधा युग्मे द्वितीयवृत्ते षोडश केशराणि केशरस्थानानि अन्यानि पत्राणि स्युः। स्वस्याष्टभागस्याष्टत्रिभागेनाष्टत्रिंशदंशेनोनिते चरमेऽन्तिमे व्यासार्धे तदुत्पन्नवृत्त इत्यर्थः। षोडशधा भक्ते षोडशविभागे कृते शराणां पञ्चानां चिह्नानामन्तरेऽवसाने धृते कर्कटे भ्रामणेनाष्टौ छदाः पत्राणि स्युरेतदुक्तं भवति अन्तिमवृत्तं समं षोडशधा विभज्य अत्र दिग्विदिशोरन्तरालचिह्ने कर्काटकस्यैकमग्रं धृत्वान्यप्रान्तस्य तस्मात्पश्चिमे चिह्ने धारितस्य भ्रामणेनाष्टौ पत्राणि समुत्पद्यन्ते। तान् सर्वान् केशरादीन् खन निजः स्वीयो य आयामो व्यासस्तदुच्चामुत्सेधां कर्णिकां कर्णिकावृत्तं त्यज मा खनेत्यनेन गर्त्तप्रमाणं सूचितमेवं कजं पद्मकुण्डं स्यात्। अत्र कर्तृणामुपकारायैकहस्तमारभ्यादशहस्तकुण्डनिर्माणाय व्यासार्धादिकमानीय मया पद्मकुण्डसारिण्यां लिखितमनयेष्टकुण्डरचनासुखेन सुज्ञैर्विधेयेति।।१५।।

पद्मकुण्डसारिणी

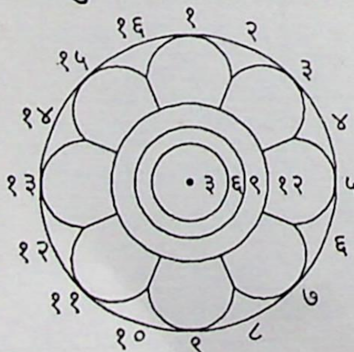
हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षे० फ०	वर्गाङ्गुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
प्रथम व्यासार्द्ध	अं	३	४	५	६	६	७	७	८	९	९
	य	०	२	१	०	५	२	७	२	०	३
	यू	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
चतुर्थ व्यासार्द्ध	अं	१२	१७	२०	२४	२६	२९	३१	३३	३६	३७
	य	०	०	६	०	६	३	६	३	०	७
	यू	०	०	४	०	४	०	०	४	०	४
पञ्चम व्यासार्द्ध	अं	१४	२१	२५	२९	३३	३६	३९	४१	४४	४७
	य	७	१	७	६	२	४	३	४	६	१
	यू	३	१	०	६	६	२	७	५	१	४

चतुर्थं व्यास	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
	यू	०	०	०	०	०	०	०	०	०	०
पञ्चम व्यास	अं	२९	४२	५१	५९	६६	७३	७८	८३	८९	९४
	य	६	२	६	५	५	०	७	१	४	३
	यू	६	२	०	४	४	४	६	२	२	०

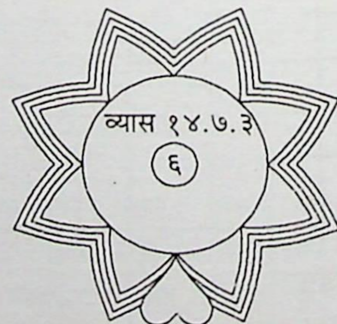
मण्डपप्रभा—इस शार्दूलविक्रीडित छन्द में पद्मकुण्ड की रचना का विधान बताया गया है। पद्म कमल को कहते हैं। यह मध्य वेदी से उत्तर के खण्ड में बनाया जाता है—

पद्मकुण्ड की निर्माणविधि—प्रकृति चतुरस्त्र का प्रमाण २४ अङ्गुल है। उसका अष्टांश (तीन अङ्गुल) का वृत्त चतुरस्त्र के मध्य भाग में बनायें। फिर दूसरा वृत्त उसके बाहर तीन अङ्गुल बढ़ाकर बनायें। इस प्रकार मध्य केन्द्र से तीन-तीन अङ्गुल बढ़ाते हुए क्रमशः तीन-छः-नौ-बारह अङ्गुल पर चार वृत्तों का निर्माण करें और अन्त में परकाल (कर्काटक) या सूत्र का विस्तार चौदह अङ्गुल, सात यव तथा तीन यूका का करके पाँचवाँ वृत्त बनायें। इस प्रकार कुल पाँच वृत्त बनते हैं। इन वृत्तों के दिशा-विदिशा में एवं मध्य में सूत्र देने से १६ भाग कर लें; जिससे अष्टदल कमल सिद्ध हो जायेगा। पद्मकुण्ड के इन वृत्तों में मध्य का लघु वृत्त 'कर्णिका' कहलाता है । फिर दूसरा वृत्त, जो कि मध्य बिन्दु से छः अङ्गुल पर होता है, 'केसरमण्डल' कहा जाता है, वहाँ तक कमल की केसर रहती है। सोलह केसरें होती हैं। पञ्चम एवं चतुर्थ वृत्त की दिग्रेखा से विदिक् की ओर जाने वाली तिर्यक् रेखा डालने से सोलह पत्र निर्मित होते हैं। अन्तिम वृत्तरेखा को परिमार्जित कर देने (मिटा) से कुण्ड का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। खनन करते समय कर्णिका के वृत्त को छोड़कर खनन करें—ऐसा ग्रन्थकार का आशय है। परन्तु यदि पूरा कुण्ड खोद दिया जाय तो कर्णिका एवं केसर का निर्माण कुण्ड को पक्का करते समय किया जाना चाहिये। यह एक हाथ के कुण्ड का विधान है। अधिक बड़े कुण्ड के निर्माण हेतु पद्मकुण्डसारिणी से सूत्र-प्रमाण ग्रहण करें।।१५।।

पद्मकुण्ड का प्राथमिक रूप



पद्मकुण्डस्वरूपम्



विषमाष्टास्रकुण्डमुपजातिकयाह—

क्षेत्रे जिनांशे गजचन्द्रभागैः स्वाष्टाक्षिभागेन युतैस्तु वृत्ते।
विदिग्दिशोरन्तरतोऽष्टसूत्रैस्तृतीययुक्तैरिदमष्टकोणम् ॥१६॥

बलदाभाष्यम्—जिनांशे चतुर्विंशतिभागे कृते क्षेत्रे गजचन्द्रभागैर्जिनांशानामष्टादशभागैः किंविशिष्टैः स्वस्याष्टाक्षिभागेनाष्टविंशत्यंशेन युतैस्तुकाराद्व्यासार्धैः कृते वृत्ते। विदिश ईशानाग्निनैर्ऋत्यवायवो दिशः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तराः तयोरन्तरतो मध्यात्। सार्वविभक्तिकस्तसिः। त्रयाणां सङ्ख्यानां पूरकस्तृतीयस्तेन युक्तैरेतदुक्तं भवति। विदिग्दिशोर्मध्येऽष्टचिह्नोत्पादनेन वृत्तस्यान्येऽप्यष्टौ समा विभागा भवेयुस्तत्रैकचिह्नतः प्रतित्रिभागान्तगामिभिरष्टसूत्रैः पूर्णज्यारूपैरिदमष्टकोणं स्यात्। अत्र कोणानां विषमत्वाद्विषमाष्टास्रकमित्यस्य संज्ञेति। विदुषामुपकारायैकहस्तमारभ्यादशहस्तकुण्डनिर्माणायोपकरणानि विषमाष्टास्रकुण्डसारिण्यां लिखितानि तान्यवगम्य सुखेन कुण्डरचना कार्येति।।१६।।

विषमाष्टास्रकुण्डसारिणी

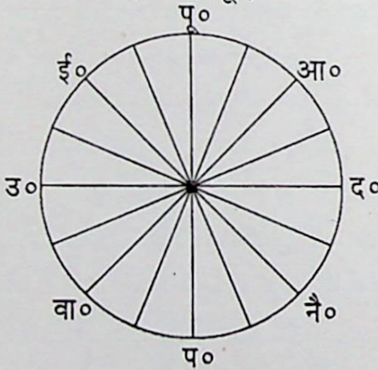
हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षे० फ०	वर्गाङ्गुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
व्यासार्द्ध	ह	०	१	१	१	१	१	२	२	२	२
	अं	१८	३	८	१३	१७	२२	१	३	७	१०
	य	५	०	२	२	६	६	१	६	७	६
	यू	१	१	५	२	४	१	६	६	३	६
बृहत्कोटि	अं	३४	४९	५९	६८	७७	८६	९०	९५	१०३	१०८
	य	४	७	५	६	१	२	६	६	२	५
	यू	१	३	३	६	६	६	०	१	३	२
बृहत् भुज	अं	१४	२०	२४	२८	३२	३५	३७	३९	४२	४५
	य	२	५	५	४	०	६	५	५	६	०
	यू	१	३	७	२	०	२	२	३	३	२
लघु भुज	अं	१०	१४	१७	२०	२२	२५	२६	२८	३०	३१
	य	१	५	३	१	४	२	४	०	२	६
	यू	०	०	६	१	७	२	७	३	०	४

मण्डपप्रभा—अब इस उपजाति छन्द के द्वारा विषम अष्टास्र कुण्ड का निर्माण बताया गया है। अष्टास्र कुण्ड ईशान कोण में बनता है।

सर्वप्रथम २४ अङ्गुल का चतुर्भुज क्षेत्र बनायें, फिर अट्ठारह अङ्गुल में उसी का अट्ठाईसवाँ भाग अर्थात् $\frac{१८}{२८}$ अर्थात् पाँच अङ्गुल तथा एक यूका के लगभग को उसी में जोड़ने से अङ्गुलादि १८.५.१ हो जाता है। इतने व्यासार्ध का कर्काटक (परकाल) लेकर उस चतुरस्र के भीतर मध्य केन्द्र से वृत्त बनायें तथा उस वृत्त में मध्य केन्द्र से दिशाओं एवं विदिशाओं में सूत्र डालें। सूत्रों की संख्या १६ होती है। इन सूत्रों में दिशा-विदिशा के मध्य भी एक-एक सूत्र डालते हैं। अतः सङ्ख्या सोलह हो जाती है। फिर दिशा एवं विदिशा के आठ सूत्रों को मिटा दें तथा मध्य के ८ सूत्रों को रहने दें। फिर उत्तर दिशा की द्वितीय रेखा से दो रेखा छोड़कर तीसरी पूर्व की रेखा से मिला कर सूत्र दें, फिर उत्तर की दूसरी रेखा से दक्षिणी चिह्न तक सूत्र से सीधी रेखा डालें। फिर ईशान तथा पूर्व के बीच के चिह्न से दक्षिण के द्वितीय चिह्न तक, नैर्ऋत्य एवं पश्चिम के मध्यवर्ती चिह्न से उत्तर की प्रथम रेखा-पर्यन्त, फिर उत्तर-पश्चिम के मध्यवर्ती चिह्न से दक्षिण के चिह्नपर्यन्त, पुनः उत्तरी चिह्न से दक्षिणी चिह्न तक सरल रेखा बनाकर वृत्त एवं मध्य की रेखाओं को हटा (मिटा) दें तो सुन्दर विषम अष्टास्र कुण्ड का प्रारूप बन जाता है। यह एक हाथ प्रमाण के विषम अष्टास्र का कथन किया गया है। दो-चार-छः हाथ के कुण्ड-हेतु सूत्र का प्रमाण सारिणी से देखें।।१६।।

विषम अष्टास्रकुण्ड का पूर्व रूप

(सोलह सूत्र)



विषमाष्टास्रकुण्डस्वरूपम्



समाष्टास्रकुण्डमुपजातिकयाह—

मध्ये गुणे वेदयमैर्विभक्ते शक्रैर्निजर्ष्यब्धिलवेन युक्तैः।
वृत्ते कृते दिग्विदिशान्तराले गजैर्भुजैः स्यादथवाऽष्टकोणम् ॥१७॥

बलदाभाष्यम्—वेदयमैश्चतुर्विंशतिभिर्विभक्ते मध्ये गुणे क्षेत्रे। निजैः स्वीयैः ऋष्यब्धिलवैः सप्तचत्वारिंशदंशकैर्युक्तैः सहितैः शक्रैर्जिनांशानां चतुर्दशभागैस्तत्तुल्यकर्काटकेन कृते सम्पादिते वृत्ते दिशः पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तराः विदिश ईशानाग्निनैर्ऋत्यवायवस्तयोरन्तराले मध्ये सम्पादिताष्टचिह्नमध्य इति शेषः। गजैरष्टभिर्भुजैः सरलरेखाभिरथवान्यत्समाष्टास्रकुण्डं स्यात्।

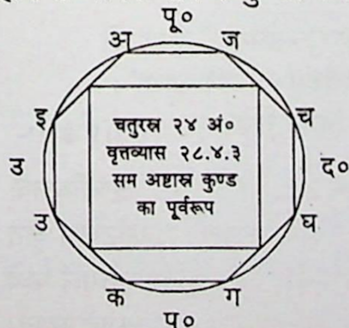
अत्रैकहस्तमारभ्यादशहस्तकुण्डनिर्माणाय फलानयनाय च व्यासादिकमानीय समाष्टास्रकुण्डसारिण्यां मया लिखितमनयेष्टकुण्डस्य व्यासादिकं ज्ञात्वा सुखेन कुण्डरचना कार्येति।।१७।।

समाष्टास्रमृदङ्गाकारकुण्डसारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षे० फ०	वर्गाङ्गुल	५७६	११५२	१७२८	२३०४	२८८०	३४५६	४०३२	४६०८	५१८४	५७६०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
व्यासार्द्ध	अं	१४	२०	२४	२८	३१	३४	३७	३९	४२	४५
	य	२	२	६	४	७	५	६	६	७	१
	यू	३	५	३	६	४	०	०	१	०	०
भुज	अं	१०	१५	१८	२१	२४	२६	२८	३०	३२	३४
	य	७	४	७	७	३	४	७	३	६	४
	यू	४	३	६	१	४	०	१	३	४	२
लम्ब	अं	१३	१८	२२	२६	२९	३१	३४	३६	३९	४१
	य	१	६	७	३	४	७	७	५	५	५
	यू	६	२	०	३	०	७	०	७	४	४

मण्डपप्रभा—समाष्टभुज कुण्ड के लिये सर्वप्रथम ईशान खण्ड में एक हाथ प्रमाण अर्थात् चौबीस अङ्गुल का चतुरस्र बनायें। फिर चौदह अङ्गुल में चौदह के सैंतालीसवें भाग अर्थात् $\frac{१४}{४७}$ = दो यव तथा तीन यूका जोड़कर अङ्गुलादि १४.२.३ का कर्कटक (परकाल) लेकर उससे उस सम चतुरस्र के मध्य में एक वृत्त का निर्माण करें। फिर पूर्व की भाँति ही उस वृत्त को सोलह चिह्नों से अङ्कित करें । फिर इनमें से दिशाओं एवं विदिशाओं के (४+४ = ८) आठ चिह्नों को लुप्त कर दें और शेष चिह्नों को आपस में समान सूत्र डालकर जोड़ दें तथा वृत्त को मिटा दें तो समाष्टास्र कुण्ड की आकृति स्पष्ट हो जायेगी। एक हाथ से अधिक मान के कुण्डों के निर्माण के लिये समाष्टास्र कुण्डसारिणी देखें।।१७।।

समाष्टास्रमृदङ्गाकारकुण्डस्वरूपम्





अल्पहवने स्थण्डिलं वसन्ततिलकेनाह—

अथवाऽपि मृदा सुवर्णभासा करमानं चतुरङ्गुलोच्चमल्पे।
हवने विदधीत वाङ्गुलोच्चं विबुधः स्थण्डिलमेव वेदकोणम् ॥१८॥

बलदाभाष्यम्—अथवाप्यल्पकालसाध्येऽल्पे हवने विबुधाः सुवर्णभासा पीतवर्णया मृदा मृत्तिकया करमानमेकहस्तायामविस्तृतं चतुरङ्गुलोच्चं चतुरङ्गुलोच्छ्रितं वाङ्गुलोच्चमेकाङ्गुलोत्सेधं वेदकोणं चतुष्कोणं स्थण्डिलमुक्तलक्षणवेदिकायाः स्थण्डिलमिति संज्ञा विदधीत कुर्यात्। तथोक्तं तन्त्रसारे—

मृदा सुवर्णया वापि सूक्ष्मवालुकयापि वा।
अङ्गुलोच्चं तथा वेदाङ्गुलोच्चं स्थण्डिलं विदुः।।

चतुष्कोणमुदक्प्राचीप्लवमल्पाहुतौ शुभम्।
पञ्चाङ्गुलोच्चमथवा वस्वङ्गुलसमुन्नतम्।। इति ।।१८।।

मण्डपप्रभा—जब थोड़े हवन की आवश्यकता हो तो कुण्ड न बनाकर स्थण्डिल ही बना लेना चाहिये। सुनहरी या लाल रङ्ग की मिट्टी अथवा अन्य शुद्ध मिट्टी से एक हाथ लम्बा और इतना ही चौड़ा तथा चार अङ्गुल ऊँचा एक समान चौकोर स्थण्डिल बना लें। स्थण्डिल को बालू से भी बना सकते हैं। आजकल घरों में छतों के ऊपर भी हवन करते हैं; अतः छत की ऊपरी पक्की भूमि पर पकी ईंटें बिछाकर तथा उन पर बालू या मिट्टी की हल्की परत डालकर स्थण्डिल बनाया जा सकता है।

कुछ आचार्य स्थण्डिल में भी मेखला बनाने के लिये कहते हैं—

स्थण्डिले मेखला कार्या कुण्डोक्तस्थण्डिलाकृतिः।
योनिस्तत्र प्रकर्तव्या कुण्डवत्तन्त्रवेदिभिः।।

समेखलं स्थण्डिलन्तु प्रशस्ते होमकर्मणि।
कण्ठं तु वर्जयेत्तत्र खाते कण्ठः प्रकीर्तितः।।

स्थण्डिल में योनि भी बनायें, पर कण्ठ नहीं बनता; क्योंकि कण्ठ तो खात में ही बन सकता है।।१८।।

इस प्रकार श्रीमद्विट्ठलदीक्षितरचित 'मण्डपकुण्डसिद्धि' ग्रन्थ की बरहा ग्राम वास्तव्य महर्षि अभय कात्यायनकृत 'मण्डपप्रभा' हिन्दी टीका का द्वितीयाध्याय पूर्ण किया गया।।२।।





अथ तृतीयोऽध्यायः

(खातकण्ठमेखलायोनिप्रकरणम्)

खातकण्ठयोर्मानमनुष्टुभाह—

खातं क्षेत्रसमं प्राहुरन्ये तु मेखलां विना।
कण्ठो जिनांशमानः स्यादर्कांश इति चापरे ॥१॥

बलदाभाष्यम्—आचार्याः क्षेत्रसमं क्षेत्रतुल्यं खातं गर्त्त प्राहुः, परमिदं मेखलया सहितमर्थात् मेखलोच्छ्रायोनस्वस्वक्षेत्रसमां भूमिं निखनेदित्यर्थः। तथोक्तं सिद्धान्तशेखरे—

खातं कुण्डप्रमाणं स्यादूर्ध्वमेखलया सह। इति।

मोहशूलोत्तरेऽपि—

हस्तमानं खनेत्तीर्यगूर्ध्वमेखलया सह।। इति।

अन्ये तु मेखलां विनैवार्थाद्भूमावेव क्षेत्रसमं खननमाहुः; यथा शारदातिलके—

यावात्कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदीरितम्। इति।

प्रयोगसारे च—

चतुरस्रं चतुःकोणं सूत्रैः कृत्वा यथा पुनः।
हस्तमात्रेण तन्मध्ये तावन्निम्नायतं खनेत्।
चतुर्विंशाङ्गुलायामं तावत्खातसमन्वितम्।। इति।

ननु मतद्वैधे कतमस्य प्रामाण्यमित्यत आह—स्मृतिद्वैधे तु विषयः कल्पनीयः पृथक् पृथगिति वचनाद्धवनीयपदार्थस्याण्वमणुभेदेन पूर्वोत्तरपक्षावाश्रयणीयौ। यतोऽनौचित्यादर्थ-परिमाणमिति कात्यायनोक्तिः। अथ च जिनांशमानः क्षेत्रस्य चतुर्विंशत्यंशः पारिभाषिकाङ्गुलः कुण्डस्य परितः कण्ठः स्यात्। तथोक्तं कालोत्तरे—

खाताद्बाह्येऽङ्गुलः कण्ठः सर्वकुण्डेष्वयं विधिः।
चतुर्विंशतितमो भागः कुण्डानामङ्गुलः स्मृतः।।

च पुनरपरे आचार्याः अर्कांशः क्षेत्रस्य द्वादशांशः कण्ठः स्यादिति जगुः। तथोक्तं सोमशम्भौ—

बहिरेकाङ्गुलः कण्ठो द्व्यङ्गुलस्तु भवेत्क्वचित्। इति।

विदुषामुपकारायैकादिहस्तकुण्डेषु खननादिकमानीय खननसारिण्यां लिखितमनयेष्ट-कुण्डस्य खननादिकं ज्ञात्वा कुण्डरचना कार्येति।।१।।

मण्डपप्रभा—विगत द्वितीयाध्याय में कुण्डों की निर्माण-विधियों का विवेचन है। अब इस अन्तिम (तृतीय) अध्याय में कुण्ड के अङ्गों (खात, कण्ठ, योनि, मेखला आदि) का विवेचन किया जा रहा है—

खात-विवेचन—आकृतिविशेष को ही कुण्ड कहते हैं। खात के उससे पृथक् होने से खात भी कुण्ड का अङ्ग है। खात से ही कुण्ड अपना पूरा रूप ले पाता है। इसलिये खात का भी स्वतन्त्र रूप में कुण्ड के अङ्गों में स्थान है। खात कितना गहरा हो, इस सम्बन्ध में आचार्य ने अपना विचार देते हुए कहा है कि खात मेखला के साथ ही क्षेत्र के समान आकार एवं आयाम का होना चाहिये। फिर आचार्य ने दूसरों का मत देते हुए कहा है कि अन्य विद्वान् मेखलाओं के विना ही खात की गहराई निर्धारित करते हैं।

(क) मेखलासहित खात—खात की कुल गहराई एक हाथ के कुण्ड में एक हाथ अर्थात् चौबीस अङ्गुल ही होनी चाहिये। मान लीजिये कि भूमि से मेखलाओं की ऊँचाई चार अङ्गुल हो तो कुण्ड की गहराई भूमि से नीचे की ओर बीस अङ्गुल की जाती है। इस प्रकार २०+४ = २४ कुल चौबीस अङ्गुल का खात मान लेते हैं। यदि मेखला का मान पाँच अङ्गुल हो तो भूमि से नीचे उन्नीस अङ्गुल खात किया जाता है । छः अङ्गुल मेखला की ऊँचाई हो तो अट्ठारह अङ्गुल का खात होता है और उसे १८+६ = २४ (चौबीस) अङ्गुल का मान लेते हैं। सात अङ्गुल की मेखला में भूमि से नीचे सत्रह अङ्गुल का ही खात करते हैं। आठ अङ्गुल मेखला होने पर खातप्रमाण मात्र सोलह अङ्गुल होगा। नौ अङ्गुल की मेखला होने पर कण्ठ से नीचे खात का प्रमाण मात्र पन्द्रह अङ्गुल ही होता है। इस प्रकार कुल चौबीस अङ्गुल मान लेते हैं । मेखलासहित खात सूक्ष्म होम द्रव्यों के लिये होता है।

(ख) मेखलारहित खात—इस मत से खात करने पर चौबीस अङ्गुल की गहराई में मेखलाओं की ऊँचाई को सम्मिलित नहीं करते हैं। इस गहराई के ऊपर कण्ठ रहता है, फिर मेखलाएँ बनाई जाती हैं। इसमें भूमि में पूरा चौबीस अङ्गुल खोदते हैं। पायस, चरु (खीर), बेलफल, इक्षुखण्ड आदि के लिये मेखलारहित खात किया जाता है। इसमें कुण्ड की गहराई अधिक होती है, जिससे स्थूल द्रव्यों को कुण्ड में समाने में सुविधा होती है। जब गोबर के उपलों का उपयोग समिधाओं के साथ किया जाय, तब भी मेखला-रहित खात करना समीचीन होगा; क्योंकि वर्तमान समय में यज्ञीय काष्ठ की समिधाओं के अभाव में गोमय (गाय का गोबर) के उपले या अरनेकण्डों (अरण्योपल) का उपयोग कर लेना चाहिये; क्योंकि गाय का गोबर मेध्य (पवित्र) माना गया है। खननप्रमाण के विषय में शारदातिलक ग्रन्थ का कथन है कि 'यावत्कुण्डस्य विस्तारः तावद् खननमीरितम्' अर्थात् कुण्ड की लम्बाई-चौड़ाई जितनी हो, उसकी गहराई भी उतनी ही होनी चाहिये।

अब विद्वानों को हविर्द्रव्यों की प्रकृति के अनुसार यहाँ दिये गए किसी भी मत को अपनाने में कोई हानि नहीं समझनी चाहिये।

कण्ठ-निर्धारण—कुण्ड में कुण्ड के ही आकार का कण्ठ भी भूतल के स्तर पर बनाना चाहिये। यदि एक हाथ का कुण्ड है तो कण्ठ एक अङ्गुल का बनायें। यदि कुण्ड दो हाथ का है तो कण्ठ दो अङ्गुल चौड़ा रखें। कुण्ड के प्रमाण का चौबीसवाँ भाग कण्ठ होना चाहिये। महाकपिलपाञ्चरात्र के अनुसार—

चतुर्विंशतिभागेन कण्ठौ वै परिकीर्तितः।

यही बात पिङ्गलामत में कही गयी है—

खातादेकाङ्गुलं त्याज्यं मेखलानां स्थितिर्भवेत्।

अर्थात् भूमि के स्तर पर चारो भुजाओं में एक अङ्गुल अवकाश छोड़कर मेखलाएँ बनानी चाहिये (यह अवकाश ही कण्ठ कहलाता है)।

शारदातिलक ने कण्ठ को नेमि कहा है। उसके अनुसार—

मेखलानां भवेदन्तः परितो नेमिरङ्गुलम्।

कण्ठ को गल भी कहते हैं तथा सिद्धान्तशेखर ग्रन्थ ने भी कण्ठ एक ही अङ्गुल चौड़ा मान्य किया है—

कुण्डे हस्तमिते कण्ठं कुर्यादेकाङ्गुलं ततः।

द्व्यङ्गुल खात—कुछ विद्वान् कण्ठ का प्रमाण दो अङ्गुल चौड़ा मानते हैं,जिनमें सोमशम्भु प्रमुख हैं। उनके मतानुसार कुछ आगमों में कण्ठ दो अङ्गुल भी चौड़ा होता है। परन्तु सर्वसम्मत एवं प्रचलित पक्ष एक अङ्गुल का ही है; उसे ही ग्रहण करना समीचीन है। दो हाथ वाले कुण्ड (३४ अङ्गुल) में कण्ठ दो अङ्गुल बनाया जा सकता है।

विद्वानों को उचित है कि वे जिस आकृति के कुण्ड का निर्माण करें, उसके लिये दी गयी खनन-सारिणी (श्लोक ३ में) का उपयोग उसके सूत्रादि के लिये करें और उसी के अनुसार कुण्ड-रचना के कार्य में प्रवृत्त हों।।१।।

मेखलानामधमतादिपक्षमाह—

अधमा मेखलैका स्यान्मध्यमा मेखलाद्वयम्।
श्रेष्ठास्तिस्त्रोऽथवा द्वित्रिपञ्चस्वधमतादिकम्॥२॥

बलदाभाष्यम्—एका मेखला वक्ष्यमाणरूपा अधमा स्यात्। मेखलाद्वयं मध्यमं स्यात्। तिस्त्रो मेखला श्रेष्ठाः स्युरिति। तथोक्तं क्रियासारे—

नाभियोनिसमायुक्तं कुण्डं श्रेष्ठं त्रिमेखलम्।
कुण्डं द्विमेखलं मध्यं नीचं स्यादेकमेखलम्।।

अथवा पक्षान्तरे द्वित्रिपञ्चसु द्विमेखले त्रिमेखले पञ्चमेखले च कुण्डे क्रमादधमतादिकमर्थादधममध्यमोत्तमताः स्युः। तथोक्तं लक्षणसङ्ग्रहे—

मुख्यास्तु पञ्च ताः प्रोक्ता मध्यमास्तिस्र एव च।
द्वे स्यातामधमे पक्षे एका सा त्वधमाधमा।।

सोमशम्भुना तु विशेष उक्तः—

त्रिमेखलं द्विजे कुण्डे क्षत्रियस्य द्विमेखलम्।
मेखलैका तु वैश्यस्य.................................।। इति।

अत्र द्विजातिकर्तृके याग इति बोध्यं, न तु जातिपरत्वेनोक्तकुण्ड इति।।२।।

मण्डपप्रभा—अब मेखलाओं के अधमता आदि पक्ष को रखते हैं कि एक ही मेखला वाला कुण्ड हो तो वह एक मेखला अधम मानी गयी है। यदि कुण्ड में दो मेखला हों तो मध्यम है। कुण्ड में तीन मेखलाओं का होना ही उत्तम है। यह मान्यता प्रथम पक्ष की है। द्वितीय पक्ष की मान्यता है कि दो मेखला अधम, तीन मेखला मध्यम तथा पाँच मेखला उत्तम होती है। इस मत के अनुसार एक ही मेखला होना अधमाधम (अधम से भी अधम) होता है।

द्विजातियों के अनुसार मेखलाओं की संख्या—कुछ आचार्यों के अनुसार ब्राह्मणों का कुण्ड तीन मेखलायुक्त होना चाहिये। क्षत्रियों के कुण्ड में दो मेखला तथा वैश्य के कुण्ड में एक मेखला होनी चाहिये। जैसा कि कथन है—

त्रिमेखलं द्विजे कुण्डे क्षत्रियस्य द्विमेखलम्।
मेखलैका तु वैश्यस्य.................................।।

इसका अभिप्राय यह है कि यज्ञकर्ता यजमान के अनुसार मेखलायें एक-दो या तीन की सङ्ख्या में रखी जा सकती हैं। इन मेखलाओं में प्रथम मेखला सात्त्विकी, दूसरी मेखला राजसी तथा तीसरी मेखला तामसी कही गयी है।

पाँच एवं सात मेखलायें—कुण्डों में पाँच तथा सात मेखलायें भी बनायी जाती हैं। लक्षणसङ्ग्रह ग्रन्थ के अनुसार पाँच मेखलायें मुख्य होती हैं तथा तीन मेखला मध्यम होती है। भविष्यपुराण के अनुसार लक्ष होम में सप्तमेखलात्मक कुण्ड का उपयोग होता है अथवा पञ्चमेखला के कुण्ड को बनाना उचित है।

मेखलाओं की आकृति—जिस प्रकार का कुण्ड हो, उसी प्रकार की मेखलायें बनाई जाती हैं। जैसा कि शारदातिलक का वचन है—

कुण्डानां यादृशं रूपं मेखलानाञ्च तादृशम्।

अर्थात् कुण्ड-जैसी आकृति का हो, उसकी मेखलायें भी तदनुरूप ही होनी अपेक्षित है। जैसे चतुरस्र कुण्ड में मेखला भी चतुरस्राकार वाली होगी। त्रिकोण कुण्ड की मेखला त्रिकोण, पञ्चास्र की पञ्चभुज, षडस्र की षड्भुज, सप्तास्र की सप्तभुज एवं अष्टास्र की अष्ट-भुज आकार की होती है। योनिकुण्ड में मेखलायें योन्याकार तथा वृत्तकुण्ड में मेखला

वृत्ताकार होती है। पद्मकुण्ड की मेखलायें पद्माकार ही होती हैं। यदि कुण्ड विषम षडस्र या विषम अष्टास्र है तो मेखला भी वैसी ही बनानी चाहिये।

त्रिमेखला के देवादि—प्रथम मेखला का वर्ण श्वेत है। इसके देवता श्री ब्रह्मा जी होते हैं; अत: प्रथम मेखला में श्री ब्रह्मा जी महाराज का पूजन किया जाता है। इसके ग्रह चन्द्र तथा शुक्र हैं। द्वितीय मेखला का वर्ण रक्त है। इसके देवता श्री विष्णु भगवान् हैं; जिन्हें अच्युत कहा गया है—

प्रथमा सात्त्विकी ज्ञेया द्वितीया राजसी मता।
तृतीया तामसी तासां देवा ब्रह्माच्युतेश्वरा।।

इस दूसरी मेखला के ग्रह सूर्य तथा मङ्गल हैं। तीसरी मेखला कृष्ण वर्ण की होती है, जिसके देव भगवान् शङ्कर हैं तथा इसके ग्रह शनि तथा राहु हैं। बुध तथा बृहस्पति कण्ठ के ग्रह होते हैं। इस प्रकार कुण्ड में ग्रह भी अधिष्ठित होते हैं।।२।।

खातमानं मेखलामानञ्च रथोद्धतयाह—

अष्टधा विहितकुण्डशरांशैः सङ्खनेद्भुवमुपर्यनलांशैः।
मेखला विरचयेदपि तिस्रः षड्गजार्कलवविस्तृतिपिण्डाः।।३।।

बलदाभाष्यम्—अष्टधा विहितस्याष्टधा विभाजितस्य कुण्डस्य क्षेत्रस्य ये शरांशाः पञ्चविभागास्तैरर्थात्तत्तुल्याङ्गुलैर्भुवं कुण्डभूमिं सङ्खनेत्। यथैकहस्तकुण्डस्याष्टमांशः ३ अस्य पञ्चभागाः १५ तेन पञ्चदशाङ्गुलं भुवं सङ्खनेदित्यर्थः। अनलांशाः अष्टमांशस्य त्रयो भागास्तैर्यथैकहस्तकुण्डे नवाङ्गुलैरुपरि भूमेरुपरि तिस्रोऽपि मेखला विरचयेदेवं द्व्यादिहस्तकुण्डेऽपि ज्ञेयमेतेन मेखलया सहितं खातमाचार्यस्याभिप्रेतमिति सूचितं भवति। तथोक्तं विश्वकर्मणा—

व्यासात्खात: कर: प्रोक्तो निम्नं तिथ्यङ्गुलेन तु।
कण्ठात्परं मेखला तु उन्नता सा नवाङ्गुलैः।। इति।

क्रियासारेऽपि—

प्रधानमेखलोत्सेधमुक्तमत्र नवाङ्गुलम्।
तद्बाह्यमेखलोत्सेधमङ्गुलद्वितयं क्रमात्।।

एकदेकहस्तकुण्डविषयम्। किंविशिष्टा मेखलाः षड्गजार्कलवविस्तृतिपिण्डाः क्षेत्रस्य षड्लवैः षष्ठांशैर्गजलवैरष्टमांशैरर्कलवैर्द्वादशांशैस्तुल्यौ विस्तृतिपिण्डौ विस्तारोच्छ्रिती यासां तास्तथैतदुक्तं भवति यथैकहस्तकुण्डे क्षेत्रस्य षडंशश्चतुरङ्गुलमष्टमांशस्त्र्यङ्गुलं द्वादशांशो द्व्यङ्गुलं तेन प्रथमा मेखला चतुरङ्गुलविस्तारोच्छ्रायवती द्वितीया त्र्यङ्गुलविस्तारोच्छ्रायवती तृतीया द्व्यङ्गुलविस्तारोच्छ्रायवतीत्येवमन्यत्रापि ज्ञेयम्। तथोक्तं योगिनीहृदये—

मेखलाः शृणु मे देवि हस्तादिषु विशेषतः।
षण्नागार्कांशसम्भागैर्मिताः स्युर्गोपिताः शुभाः।।३।।

खननमेखलासारिणी

हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६६	७२	७५
	य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
क्षेत्राष्टमांश	अं	३	४	५	६	६	७	८	८	९	९
	य	०	२	२	०	६	३	०	४	०	४
खनन	अं	१५	२१	२६	३०	३३	३६	४०	४२	४५	४७
	य	०	२	२	०	६	७	०	४	०	४
मेखलोच्छ्रिति	अं	९	१२	१५	१८	२०	२२	२४	२५	२७	२८
	य	०	६	६	०	२	१	०	४	०	४
१ मे. उ.	अं	४	५	७	८	९	९	१०	११	१२	१२
	य	०	५	०	०	०	६	५	३	०	५
२ मे. उ.	अं	३	४	५	६	६	७	८	८	९	९
	य	०	२	२	०	६	३	०	४	०	४
३ मे. उ.	अं	२	२	३	४	४	५	५	५	६	६
	य	०	७	४	०	४	०	३	५	०	३

मण्डपप्रभा—अब इस श्लोक में 'रथोद्धता' नामक छन्द द्वारा मेखलाओं के लक्षण बताये जा रहे हैं।

कुण्डमान का अष्टधा विभाजन—ग्रन्थकार कहते हैं कि कुण्डमान के आठ भाग कीजिये तो चौबीस अङ्गुल में $\frac{२४}{८}$ = ३ अङ्गुल त्रयात्मक एक भाग होता है (अधिक बड़े कुण्डों के लिए खननसारिणी का उपयोग करना चाहिये)।

कुण्डखात—भूमितल से पाँच भाग (५×३ = १५) अर्थात् पन्द्रह अङ्गुल नीचे तक खनन करना चाहिये और शेष तीन भागों (३×३ = ९) अर्थात् नौ अङ्गुल की ऊँचाई तक तीन मेखलाओं का निर्माण करना चाहिये।

प्रथम मेखला—प्रथम मेखला की ऊँचाई कुण्डप्रकृति का छठा भाग अर्थात् ($\frac{२४}{६}$ = ४) चार अङ्गुल तथा चौड़ाई भी इतनी ही होनी चाहिये।

द्वितीय मेखला—मध्य में द्वितीय मेखला कुण्ड के क्षेत्रफल का गजांश (अष्टमांश) अर्थात् तीन अङ्गुल चौड़ी तथा तीन ही अङ्गुल ऊँची होनी अपेक्षित है।

तृतीय मेखला—यह सबसे नीचे बनती है, जिसकी ऊँचाई कुण्डक्षेत्र का अर्कांश अर्थात् बारहवाँ भाग होती है। यह २ अङ्गुल चौड़ी तथा इतनी ही ऊँची होती है।

मेखलाओं के इसी मान को योगिनीहृदय तथा क्रियासार नामक ग्रन्थों में भी स्वीकार किया गया है। इस प्रकार इस मत से प्रथम मेखला, जो सबसे ऊपर होती है, वह भूमि से नौ अङ्गुल ऊँची होती है।

दूसरी मध्य की मेखला भूमि से पाँच अङ्गुल ऊँची होती है। तीसरी मेखला जो सबसे नीचे होती है, उसका उत्सेध मात्र दो अङ्गुल होता है। तीनों मेखलाओं की ऊँचाई मिलकर ४+३+२ कुल नौ अङ्गुल हो जाती है और मेखलाओं की चौड़ाई या व्यास भी इसी प्रकार से होता है।

सोमशम्भु के अनुसार एक हाथ का चौबीसवाँ भाग अङ्गुल होता है। उसी के द्वारा मेखला, कण्ठ तथा नाभि का निर्माण करना चाहिये। कुण्ड की माप के लिये कुण्डकारिका में आज के फीते या स्केल की भाँति पट्टिका (Scale) बनाने का निर्देश है, जिसे काठ की पतली पट्टी पर बनाकर अङ्गुल तथा यवों के चिह्न लगते हैं।।३।।

प्रकारान्तरेण मेखलामानं नाभिमानं च विपरीताख्यानकीभ्यामाह—

रसांशकादुन्नतविस्तृताश्च तिस्रोऽथवैका युगभागतुल्या।
पञ्चाथवा षट्शरवेदरामद्व्यंशैस्तताः स्युर्नवभागपिण्डा ।।४।।

आद्या परास्तच्छरभागहीना जिनांशकण्ठाद्बहिरेव सर्वाः।
कुण्डानुकारा अपि मेखलाः स्युरर्काङ्गभागोच्चततस्तु नाभिः ।।५।।

बलदाभाष्यम्—च पुनः रसांशकादुन्नतविस्तृताः क्षेत्रस्य षडंशादुन्नता उच्छ्रिताः षडंशेनैव विस्तृताः तिस्रो मेखलाः स्युरेतदुक्तम्भवति यथैकहस्तकुण्डे क्षेत्रस्य षडंशः ४ तेनाधः क्रमात् प्रथमा मेखला द्वादशाङ्गुलविस्तृता चतुरङ्गुलोच्चा द्वितीयाष्टाङ्गुलविस्तृता चतुरङ्गुलोच्छ्रिता तृतीया चतुरङ्गुलविस्तृता तावदेवोच्चेत्येवमन्यत्रापि ज्ञेयम्। तथोक्तं वाशिष्ठ्याम्—

प्रथमा मेखला तत्र द्वादशाङ्गुलविस्तृता।
चतुर्भिरङ्गुलैस्तस्याश्चोन्नतिश्च समन्ततः।।

तस्याश्चोपरि वप्रः स्याच्चतुरङ्गुलमुन्नतः।
अष्टाभिरङ्गुलैः सम्यग्विस्तीर्णन्तु समन्ततः।।

तस्योपरि पुनः कार्यो वप्रः सोऽपि तृतीयकः।
चतुरङ्गुलविस्तीर्णश्चोन्नतश्च तथाविधः।। इति।

इयमेव द्वादशाङ्गुलपक्षीया मेखला कथमित्यग्रे विस्तरतः कथयिष्ये। अथवैका मेखला युगभागेन क्षेत्रस्य चतुर्थांशेन तुल्योन्नता विस्तृता च कार्या यथैकहस्तकुण्डे क्षेत्रस्यास्य २४ चतुर्थांशः ६ तेन षडङ्गुलोन्नता विस्तृता चैवमन्यत्रापि। तथोक्तं पिङ्गलामते—

एका षडङ्गुलोत्सेधा विस्तारा मेखला मता।। इति।

अथवा पञ्चमेखलापक्षे तावच्चतुर्विंशतिधा भक्ते क्षेत्रे लब्धाङ्गुलादिसममेकं पारिभाषिकाङ्गुलं भवेत् तत्र षट् प्रसिद्धाः पञ्च वेदाश्चत्वारो रामास्त्रयो द्वौ प्रसिद्धौ एतदंशैरर्थात्पारिभाषिकाङ्गुलैर्विस्तृताः प्रथमाद्याः पञ्चमेखलाः स्युस्तत्राद्या प्रथमा मेखला नवभागपिण्डा पारिभाषिका नवाङ्गुलोच्चा स्यादपराश्चतस्त्रः तस्याः प्रथममेखलोच्छ्रितेर्यः शरभागः पञ्चमांशस्तेन हीनाः स्युरर्थाच्छरभागहीना प्रथमोच्छ्रितिः द्वितीयोच्छ्रितिः पुनस्तेन हीना द्वितीयोच्छ्रितिस्तृतीयोच्छ्रितिः स्यादेवमग्रेऽपि। सिद्धान्तशेखरे—

षडबाणाब्धिवह्निनेत्रमिताः स्युः पञ्च मेखलाः।

लक्षणसङ्ग्रहे—

पञ्च वा मेखलाः कार्याः षट्पञ्चाब्धित्रिपक्षकैः।
प्रथमा कुण्डसहितान्तरोत्सेधनवाङ्गुला।। इति।

अपि च किन्तु सर्वा मेखला जिनांशकण्ठात्पारिभाषिकाङ्गुलसमकुण्डाद्बहिः कुण्डानुकाराः कुण्डसदृशा एव स्युः। पिङ्गलामते—

खातादेकाङ्गुलं त्यक्त्वा मेखलानां स्थितिर्भवेत्।

शारदायाम्—

कुण्डानां यादृशं रूपं मेखलानां च तादृशम्।। इति।

तु पुनरर्काङ्गभागाभ्यां क्षेत्रस्य द्वादशांशषडंशाभ्यां समावुच्चततावुच्छ्रितिविस्तारौ यस्य तथाभूतः कुण्डस्य मध्ये नाभिः कार्यः।।४-५।।

मेखलामानसारिणी

हस्त			१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
अर्कांगुल परिमाण	क्षेत्र	अं	२४	३४	४१	४८	५३	५८	६३	६७	७२	७५
		य	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
१ म ख. प	उ.वि.	अं	४	५	७	८	९	९	१०	११	१२	१२
		य	०	५	०	०	०	७	५	३	०	५
पञ्चमेखलापक्षे विस्तृतिः	उ.वि.	अं	६	८	१०	१२	१३	१४	१५	१७	१८	१९
		य	०	४	३	०	३	५	७	०	०	०
	१ मे. वि	अं	६	८	१०	१२	१३	१५	१५	१६	१८	१८
		य	०	४	३	०	३	५	७	५	०	७
		यू	०	०	२	०	२	४	०	६	०	६
	२ मे. वि	अं	५	६	८	१०	११	१२	१३	१३	१५	१५
		य	०	०	५	०	१	१	१	७	०	६
		यू	०	५	३	०	३	७	७	४	०	४

पञ्चमेखलापक्षे विस्तृति:	३ मे. वि	अं	४	५	६	८	८	९	१०	११	१२	१२
		य	०	५	७	०	७	६	४	१	०	५
		यू	०	३	४	०	४	४	५	१	०	१
	४ मे. वि	अं	३	४	५	६	६	७	७	८	९	९
		य	०	२	१	०	५	२	७	२	०	३
		यू	०	०	५	०	५	६	४	७	०	७
	५ मे. वि	अं	२	२	३	४	४	४	५	५	६	६
		य	०	६	३	०	३	७	२	४	०	२
		यू	०	५	६	०	६	१	३	५	०	५
पञ्चमेखलापक्षे उच्छ्रिति:	१ मे. उ	अं	९	१२	१५	१८	२०	२२	२३	२५	२७	२८
		य	०	६	४	०	१	०	६	०	०	३
		यू	०	०	७	०	०	२	४	५	०	५
	२ मे. उ	अं	७	१०	१२	१४	१६	१७	१९	२०	२१	२२
		य	१	१	३	३	०	५	१	०	४	७
		यू	५	५	७	२	६	०	४	४	७	७
	३ मे. उ	अं	५	७	९	१०	१२	१३	१४	१५	१६	१७
		य	३	५	३	६	०	१	२	०	१	४
		यू	२	२	०	३	४	६	३	३	५	१
	४ मे. उ	अं	३	५	६	७	८	८	९	१०	१०	१२
		य	४	०	२	१	०	६	४	०	४	०
		यू	६	६	०	५	३	४	२	२	४	४
	५ मे. उ	अं	१	२	३	३	४	४	४	५	५	६
		य	६	४	१	५	०	३	६	०	१	३
		यू	३	३	०	०	२	२	१	१	२	६

मण्डपप्रभा—यहाँ चौथे श्लोक के पूर्वार्ध में तीन मेखला का मान तथा चौथे के उत्तरार्ध से पाँचवें श्लोक तक पाँच मेखलाओं का मान (पञ्चमेखला पक्ष में) प्रकारान्तर से बताया गया है, उसी में नाभि बनाने का भी निर्देश है—

त्रिमेखलापक्ष में—इस मत से यदि तीन मेखला बनानी हो तो चौबीस अङ्गुल के प्रकृतिक्षेत्र के षष्ठांश (चार अङ्गुल) से प्रत्येक मेखला बनायें। इस प्रकार प्रत्येक मेखला चार अङ्गुल ऊँची तथा चौड़ी होती है। इसमें ऊपर की प्रथम मेखला भूमि से या कण्ठ से बारह अङ्गुल ऊँची, दूसरी मध्य मेखला आठ अङ्गुल ऊँची तथा सबसे नीचे

की तीसरी मेखला चार अङ्गुल ऊँची होती है। इन तीनों की चौड़ाई बराबर ही अर्थात् प्रत्येक की चार-चार अङ्गुल रहती है। यही मान वासिष्ठी हवन-पद्धति में भी स्वीकार किया गया है। आजकल जिस प्रकार की ईंटों का प्रचलन भवन-निर्माण में होता है, उनसे इसी प्रकार की मेखलायें बनती हैं; क्योंकि इनकी चौड़ाई चार इंच तथा ऊँचाई तीन इंच के लगभग होती है और एक इंच का प्रमाण एक अङ्गुल के लगभग ही होता है। यदि यजमान का हाथ छोटा हो तो कुछ छोटे साँचे की ईंट से काम चलाया जा सकता है।

एक मेखला—यदि एक ही मेखला बनाना अभीष्ट हो तो ग्रन्थकार कहते हैं—एका युगभागतुल्या' अर्थात् एक मेखला के कुण्ड के क्षेत्रफल के युगभाग (चतुर्थांश = $\frac{२४}{४}$) अर्थात् छः अङ्गुल ऊँची तथा छः अङ्गुल चौड़ी बनानी चाहिये। पिङ्गलामत में भी इसी का समर्थन किया गया है—

एका षडङ्गुलोत्सेधा विस्तारा मेखला मता।

पञ्चमेखला पक्ष—जब पाँच मेखलायें बनाने की आवश्यकता हो तो उनका निर्माण षट् (छठवाँ भाग = $\frac{२४}{६}$), शर (५), वेद (४), राम (३), भाग (३), द्वय (२) अर्थात् दो भाग इस क्रम से बनायें। तात्पर्य यह है कि १. प्रथम मेखला की ऊँचाई नौ अङ्गुल तथा चौड़ाई छः अङ्गुल होती है। २. दूसरी मेखला की ऊँचाई सात अङ्गुल एक यव तथा पाँच यूका (७.१.५) होती है तथा चौड़ाई पाँच अङ्गुल होती है। ३. तीसरी मेखला पाँच अङ्गुल, तीन यव, दो यूका (५.३.२) ऊँचाई तथा चौड़ाई चार अङ्गुल होती है। ४. चौथी मेखला की ऊँचाई तीन अङ्गुल, चार यव तथा छः यूका (३.४.६) एवं चौड़ाई तीन अङ्गुल होती है। ५. पाँचवीं अन्तिम मेखला एक अङ्गुल, छः यव तथा तीन यूका (१.६.३) ऊँची तथा दो अङ्गुल चौड़ी होती है। इस प्रकार पाँचों मेखलायें भूमि से नौ अङ्गुल ऊँची होती हैं।

मेखला एक अङ्गुल कण्ठ छोड़कर बनानी चाहिये। ऊपर जो ऊँचाई का विभाजन है, वह नौ अङ्गुल का पञ्चमांश प्रथम मेखला को छोड़कर शेष सबमें घटाते जाते हैं। पञ्चमांश $\frac{९}{५}$ = एक अङ्गुल, छः यव तथा तीन यूका के लगभग होता है। दूसरी मेखला में इतना घटाने से ७.१.५ शेष रहता है, पुनः घटाने पर तीसरी मेखला की ऊँचाई आ जाती है। इसी क्रम से ऊँचाई जाननी चाहिये। बड़े कुण्डों के मान के लिये मेखला खनन-सारिणी का उपयोग करें।

नाभि—नाभि की चौड़ाई चार अङ्गुल तथा ऊँचाई (गहराई) दो अङ्गुल रखनी चाहिये।।४-५।।

नाभिलक्षणं शालिन्याह—

कुण्डाकारो नाभिरम्भोजसाम्यो वाब्जेऽयं नेनांशहानिर्द्दलाग्रे।
शेषक्षेत्रे वह्निवृत्तैः समेते स्युर्वै कर्णी केसराः पत्रकाणि ।।६।।

बलदाभाष्यम्—कुण्डस्याकार इवाकारो यस्य तथाभूतो वाब्जसाम्य: कमलसदृशो नाभि: स्यात्। अब्जे पद्मकुण्डेऽयं नाभिर्न स्यात्तत्र नाभिरूपाया: कर्णिकाया: सत्त्वात्। तथोक्तं शारदायाम्—

कुण्डानां कल्पयेदन्तर्नाभिमम्बुजसन्निभम्।
तत्तत्कुण्डानुकारं वा मानमस्य निगद्यते।।

मुष्ट्यरत्न्येकहस्तानां नाभेरुत्सेधता मता।
नेत्रवेदाङ्गुलोपेत ....।। इति।

अथ च नाभे: पद्माकाररचनोच्यते। तत्र नाभेर्यो विस्तार: क्षेत्रस्य षडंशरूपस्तदेवास्य क्षेत्रम्। तत्र दलाग्रे दलाग्रनिमित्तमिनांशहानि: क्षेत्रस्य द्वादशांशह्रास: कार्य: शेषक्षेत्रे वह्निवृत्तैस्त्रिभिर्वृत्तै: समेते तत्राद्यं वृत्तं वै निश्चयेन कर्णी कर्णिका द्वितीयं वृत्तं केशरा: केशरस्थानं तृतीयं वृत्तं पत्रकाणि पत्राणि स्युरथावशिष्टं दलाग्रमिति। अत्र मदीयं सूत्रम्—

क्षेत्रादेकादशगुणाद्युग्माश्वैरसरामकै: युगनेत्रैर्भजेल्लब्धव्यासार्धान्नाभिमध्यत:।
कर्णिकाद्यं लिखेद्वृत्तत्रयं वै कर्कटेन तु शेषं पत्राग्रमाख्यातं नाभि: स्यात्पद्मसन्निभ:।।

शारदायाम्—

पद्मे क्षेत्रस्य सन्त्यज्य द्वादशांशं बहि: सुधी:।
तन्मध्यं विभजेद्वृत्तैस्त्रिभिस्तत्र समन्तत:।।

आद्यं स्यात्कर्णिकास्थानं केशराणां द्वितीयकम्।
तृतीयं तत्र पत्राणि मुक्तांशेन दलाग्रकम्।। इति।।६।।

नाभिसारिणी

कुण्ड संख्या		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
नाभिक्षेत्रम्	अं	४	५	६	८	८	९	१०	११	१२	१२
	य	०	५	७	०	७	६	४	१	०	१
	यू	०	३	४	०	४	३	५	१	०	१
उच्छ्रिति:	अं	२	२	३	४	४	४	५	५	६	६
	य	०	६	३	०	३	७	२	४	०	२
	यू	०	५	६	०	६	१	३	५	०	५
१ व्यासार्द्ध	अं	०	०	१	१	१	१	१	१	१	१
	य	५	६	०	१	२	४	४	५	६	७
	यू	०	७	४	६	७	०	७	५	५	३
२ व्यासार्द्ध	अं	१	१	२	२	२	३	३	३	३	३
	य	२	५	१	३	५	०	१	३	५	६
	यू	०	६	०	४	६	०	६	२	२	७

३ व्यासार्द्ध	अं	१	२	३	३	४	४	४	५	५	५
	य	७	४	१	५	०	४	६	०	४	६
	यू	०	५	४	२	५	०	१	७	०	२

मण्डपप्रभा—नाभि किस प्रकार की होनी चाहिये, इसका निर्देश तथा निर्माण-प्रकार इस शालिनी छन्द में बताया गया है—

कुण्डाकार नाभि—नाभि का आकार वैसा ही रखना चाहिये, जैसा कि कुण्ड हो। यदि कुण्ड समचतुरस्र है तो नाभि भी समचतुरस्र होगी। यदि त्रिकोण है तो नाभि भी त्रिकोण होगी, तथैव योनिकुण्ड में नाभि योन्याकार हुआ करती है। षडस्र तथा अष्टास्र कुण्डों में नाभि का आकार तथैव होता है। परन्तु जो नाभि कुण्डाकार बनाई जाय, उसे गहरी बनानी चाहिये तथा उसका जो उच्छ्राय वर्णित है, उसे कुण्डभूतल से गहराई के रूप में बनानी चाहिये। जैसा कि महामहोपाध्याय वासुदेव शास्त्री ने कुण्डार्क की संस्कृत टीका में लिखा है—'सा च स्वा भा। मनुष्येषु यथा नाभ्याकारो दृश्यते तथा तस्याकारः कार्यः स च गर्तरूपः। अथवा अब्जाकारा।'

अर्थात् मनुष्यों में जैसा नाभि का आकार होता है, वैसी ही नाभि कुण्ड में बनानी चाहिये। वह गर्तरूप (गड्ढे के रूप में) अथवा अब्जाकार (कमल की भाँति) होती है। तात्पर्य यह है कि नाभि को गहरा ही बनाना चाहिये और उसे कुण्ड का आकार देना चाहिये।

अब्जाकार नाभि—यह नाभि का दूसरा प्रकार है, जिसे अब्जाकार कहते हैं। जब कुण्ड में अब्जाकार नाभि बनाते हैं तब वह कुण्डतल में उभरी हुई (ऊँची) होती है, गहरी नहीं। इसीलिये ग्रन्थकार कहते हैं—

नाभिरम्भोजसाम्यो वा।

जब नाभि कमलसदृश बने तो उसे गर्तरूप नहीं बनाना चाहिये। यही अभिप्राय है। इसे ही पद्माकार नाभि कहते हैं।

पद्मकुण्ड में नाभि का अभाव—सभी कुण्डों में नाभि बनाते हैं, परन्तु पद्मकुण्ड में नाभि नहीं बनती है; क्योंकि पद्मकुण्ड में जो कर्णिका बनती है वह स्वयं ही नाभि का स्थान ग्रहण करती है।

अब्ज़ाकार नाभि-निर्माण की विधि—कुण्डतल के मध्य में दो अङ्गुल ऊँची तथा चार अङ्गुल लम्बी एवं चार अङ्गुल चौड़ी वर्गाकार (ऊँचाई के साथ घनाकार) सनी हुई आर्द्र मिट्टी रक्खें। फिर उसे वृत्ताकार स्वरूप प्रदान करें, उसमें परकाल का सहयोग लेना चाहिये। नाभि में आठ पत्र दो अङ्गुल प्रमाण के बनायें। मध्य में कर्णिका तथा केसरमण्डल को कल्पित करें। बारहवाँ भाग छोड़ कर पत्रों का अग्रभाग बनाना चाहिये। जैसा कि शारदातिलक का कथन है—

पत्रे क्षेत्रस्य सन्त्यज्य द्वादशांशं बहिः सुधीः।
तन्मध्यं विभजेद् वृत्तैस्त्रिभिस्तत्र समन्ततः।।

आद्यं स्यात् कर्णिकास्थानं केशराणां द्वितीयकम्।
तृतीयं तत्र पत्राणि मुक्तांशेन दलाग्रकम्।।

प्रारम्भ में चारो ओर अङ्गुलादि ०.२.५.२ छोड़ दें (काट दें) तो शेष बचे क्षेत्र में तीन समान वृत्त क्रमशः ०.४.७.१ व्यासार्ध, १.१.६.२ व्यासार्ध तथा १.६.५.३ व्यासार्ध का बनाकर नाभि सम्पन्न करें।।६।।

योनिलक्षणं स्रग्धरयाह—

योनिर्व्यासार्द्धदीर्घा वितितिगुणलवादायताब्धिद्विभागो
तुङ्गा तावत्समन्तात्परिधिरुपरिगा तावदग्रेण रम्या।
निम्नं कुण्डं विशन्ती वलयदलयुगेनान्विताऽधोविशाला
मूलात्सच्छिद्रनालान्तरवटरुचिराश्वत्थपत्राकृतिः सा।।७।।

बलदाभाष्यम्—कुण्डेषु यो व्यासार्धः तेन दीर्घा तथा या विततिर्विस्तृतिस्तस्या गुणलवात् तृतीयांशादायता विस्तृता। तथा चाब्धिद्विभागेन विस्तारस्य चतुर्विंशत्यंशेन पारिभाषिकाङ्गुलेन उत्तुङ्गोन्नता मेखलोपरि गतेत्यर्थः। तावत्पारिभाषिकाङ्गुलसम एव समन्तादभितः परिधिर्मेखला यस्याः सा। तावत्पारिभाषिकाङ्गुलसम एवोपरिगार्थादुपरिगा मेखला तावदग्रेणाग्रभागेन निम्नं यथा स्यात्तथा तावदेव कुण्डं विशन्ती प्रविशन्ती यच्च प्राकृतभूमेर्योन्याग्रोच्छ्रितिरेकादशाङ्गुला तथा मूलोच्छ्रितिर्द्वादशाङ्गुला यथैकाङ्गुला कुण्डे प्रविशन्ती भवेत्तथा विधेयेति। वलयदलयुगेनार्द्धवृत्तद्वयेनान्विता युक्ता अधोविशालार्थादुपरि किञ्चित्सङ्कोचवती मूलादुपस्थाद्योन्यारम्भप्रदेशात्सकाशात् योनिमध्येऽग्रं यावत् सच्छिद्रं सरन्ध्रं नालं कमलनालसदृशं यस्यां सा तथान्तरे मध्ये शुचिघृतधारणार्थं वटेन गर्त्तेन रुचिरा सुन्दरा एवम्भूता या योनिः सा रम्या रमणीयाश्वत्थपत्राकृतिः स्यात्। तथोक्तं वायवीये—

मेखलामध्यतः कुर्यात्पश्चिमे दक्षिणेऽपि वा।
शोभनां मध्यतः किञ्चिन्निम्नामुन्मीलितां शनैः।।

त्रैलोक्यसारे—

दीर्घा सूर्याङ्गुला योनिस्त्र्यंशोना विस्तरेण तु।
एकाङ्गुलोच्छ्रिता सा तु प्रविष्टाभ्यन्तरे तथा।।
कुम्भद्वयार्धसहिताऽश्वत्थदलवन्मता।
अङ्गुष्ठमेखलायुक्ता मध्ये त्वाज्यधृतिक्षमा।। इति।

पञ्चरात्रे—

अर्काङ्गुलोच्छ्रिता योनिर्विदध्यात्तावदायता। इति।।७।।

योनिसारिणी

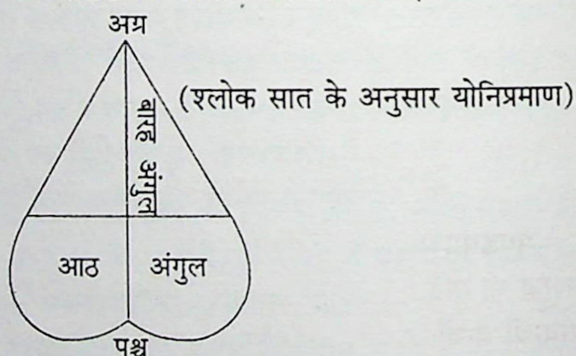
हस्त		१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०
या. द.	अं	१२	१७	२०	२४	२६	२९	३१	३३	३६	३७
	य	०	०	६	०	६	३	६	३	०	७
या. वि.	अं	८	११	१३	१६	१७	१९	२१	२२	२४	२५
	य	०	३	७	०	७	५	१	२	०	२
पा. भा. १ भं	अं	१	१	१	२	२	२	२	२	३	३
	य	०	३	६	०	२	४	५	७	०	१

मण्डपप्रभा—इस स्रग्धरा छन्द में योनिनिर्माण की विधि दर्शायी गयी है।

सर्वप्रथम प्रकृति चतुरस्र २४ अङ्गुल प्रमाण का आधा अर्थात् द्वादशाङ्गुल दीर्घ तथा आठ अङ्गुल विस्तार वाला तथा एक अङ्गुल ऊँचा चतुरस्र बनायें। इस चतुरस्र को कुण्ड की उस दिशा में बनाना चाहिये, जिसमें कि योनि बनानी है। इसमें छः अङ्गुल के अन्तर पर मध्य में लम्बाई में एक रेखा खींच दें तथा उस रेखा को मध्य से काट कर जाने वाली दूसरी रेखा भी खींच दें। यह योनि आगे कुण्ड में झुकी हुई तथा कुण्ड में प्रविष्ट होती दिखनी चाहिये।

तात्पर्य यह है कि योनि बारह अङ्गुल लम्बी, आठ अङ्गुल चौड़ी तथा एक अङ्गुल ऊँची होनी अपेक्षित है। यह कुण्ड में एक अङ्गुल आगे निकली हुई तथा ढालू होनी चाहिये। इसकी ऊँचाई अग्र की ओर ग्यारह अङ्गुल तथा पश्चभाग की ओर बारह अङ्गुल होनी चाहिये।

त्रैलोक्यसार शारदातिलक तथा पाञ्चरात्र में योनिनिर्माण की विधि इसी प्रकार से दी गयी है।



(श्लोक सात के अनुसार योनिप्रमाण)

योनि का आकार अश्वत्यदल अथवा ताम्बूलपत्र के सदृश होना चाहिये।

द्वादशाङ्गुलमेखलापक्षे योनिलक्षणमाह—

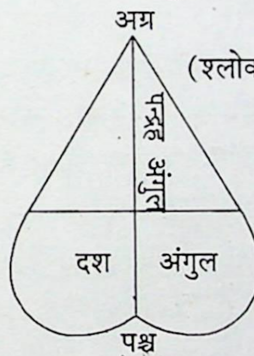
अथार्काङ्गुलपक्षे तु मेखलानां दशाङ्गुलैः ।
विस्तृता तिथिभिर्दीर्घाङ्गुलिभिर्योनिरिष्यते ॥८॥

बलदाभाष्यम्—अथ तु मेखलानामर्काङ्गुलपक्षेऽर्थाद्यत्र पारिभाषिकद्वादशाङ्गुलमिता मेखला रसांशकादुन्नतविस्तृतेत्यादिना चिकीर्षिता तत्र पारिभाषिकैर्दशाङ्गुलैर्विस्तृता तथा तिथिभि: पञ्चदशभि: पारिभाषिकाङ्गुलिभिर्दीर्घा योनिरिष्यते कथ्यत इति। तथोक्तं प्रयोगसारे—

स्थितां प्रतीच्यामायामे सम्यक् पञ्चदशाङ्गुलाम्।
द्विपञ्चाङ्गुलविस्तारां षट्चतुर्द्व्यङ्गुलां क्रमात्।।
त्रयोदशाङ्गुलोत्सेधां योनिं कुण्डस्य कारयेत्।। इति ।।८।।

मण्डपप्रभा—पूर्व के श्लोक में नौ अङ्गुल की मेखला के लिये योनि-प्रमाण एवं निर्माणविधि कही गयी है। इस श्लोक में यदि कुण्ड की मेखला द्वादशाङ्गुल हो तो योनि-निवेशन का प्रमाण क्या हो ? इसका निर्देश है।

जब मेखलाएँ चार-चार अङ्गुल ऊँची तथा इतनी ही चौड़ी होकर तीन की सङ्ख्या में हों, तब उस स्थिति में पन्द्रह अङ्गुल लम्बी, दश अङ्गुल चौड़ी तथा पन्द्रह अङ्गुल ऊँची योनि का निर्माण करना चाहिये। प्रयोगसार में ऊँचाई का प्रमाण तेरह अङ्गुल कहा गया है। योनि के क़िनारी की ऊँचाई एक अङ्गुल ही रहेगी।।८।।



(श्लोक आठ के अनुसार योनिप्रमाण)

(ग्रन्थप्रशंसामाह—

अङ्गीकार्या मत्कृतिर्निर्मलेयं कस्मादेवं पण्डितान्प्रार्थयेऽहम्।
क्षीरं पेयं नीरमितरान्विहाय को वा विद्यं हतज्ञार्थपीता।।

मण्डपप्रभा—किसी-किसी मुद्रित प्रति में यह श्लोक भी प्राप्त है, जो कि कुछ अशुद्ध भी मुद्रित है। इसमें आचार्य ने अपनी कृति को क्षीर की भाँति तथा अन्य एतत् सम्बन्धी ग्रन्थों को नीर की तरह बताया हैं। इस प्रकार अपनी कृति की निर्मलता की प्रशंसा की है।।)

ग्रन्थोपसंहारमाह—

इति मण्डपकुण्डसिद्धिमेनां रुचिरां विट्ठलदीक्षितो व्यधत्त।
अधिकाशिनगर्य्युमेशतुष्ट्यै विबुधः शोधयतादिमां विचार्य्य ।।९।।

शशियुगतिथिगण्ये याति शाके वरेण्ये
विभवशरदि रम्ये मासि शस्ये तपस्ये।
शशधरभृतिऋक्षेऽमुष्यपक्षे वलक्षे
कमलनयनतिथ्यां भानुमद्वारवत्याम् ॥१०॥

बलदाभाष्यम्—इतीत्थं विट्ठलदीक्षितः शशियुगतिथिगण्ये एकचत्वारिंशदधिक-पञ्चदशशतसङ्ख्ये १५४१ शाके याति गच्छति सति वरेण्य उत्तमे रम्ये रमणीये विभव-शरदि विभवेऽब्दे शस्ये प्रशस्ते तपस्ये फाल्गुने मासि शशधरभृतिऋक्षे मृगशिरोभे अमुष्य चन्द्रस्य वलक्षे वलयुक्ते पक्षेऽर्थात्सिते पक्षे भानुमद्वारवत्यां रविवारयुक्तायां कमलनयनोः हरिस्तस्य तिथ्यामर्थाद्द्वादश्यां एनां रुचिरां प्रशस्तां मण्डपकुण्डसिद्धिं अधिकाशिनगर्यां काशीपुर्यां यावुमेशौ शिवपार्वती तयोस्तुष्ट्यै प्रीतये व्यधत्त कृतवान्। विबुधः विचार्य इमां शोधयताच्छुद्धां करोत्वित्यर्थः।।९-१०।।

मण्डपप्रभा—इस प्रकार उत्तम काशी नगरी में निवास करते हुए भगवान् शिव की प्रसन्नता के लिये विट्ठल दीक्षित ने इस ग्रन्थ की रचना की है। विद्वानों को इस ग्रन्थ को विचारपूर्वक अपनाना चाहिये।

इस ग्रन्थ की रचना शकाब्द शशियुगतिथि अर्थात् पन्द्रह सौ इकतालीस शालिवाहन में, विभव नामक संवत्सर में तपस्य मास (फाल्गुन) के उस पक्ष में हुई है, जिसमें चन्द्रमा पुष्टि को प्राप्त होता है अर्थात् शुक्ल पक्ष में हुई है। उस दिन शशधर ऋक्ष (आर्द्रा नक्षत्र) तथा भानुवार (रविवार) का दिवस था।।९-१०।।

भूरसाभ्राक्षि सम्मिते वत्सरे वैक्रमे शुभे।
चैत्रशुक्ले वैश्वतिथौ आश्लेषां गुरुवासरे।।

ग्रामे तु बरहापुण्ये लहाराख्ये जनपदे।
कात्यायनो अभयेन पूर्णायं मण्डपप्रभा।।

इस प्रकार श्रीमद्विट्ठलदीक्षितविरचित मण्डपकुण्डसिद्धि नामक ग्रन्थ की बरहाग्रामवास्तव्य महर्षि अभयकात्यायनकृत 'मण्डपप्रभा' हिन्दी टीका का यह तीसरा अध्याय पूर्ण हुआ।।३।।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः



परिशिष्ट

❁ भद्रमण्डलों की रचना ❁

❁ यज्ञीय पदार्थ एवं वनस्पतियाँ ❁

❁ यज्ञीय पात्र-निर्माण में प्रयोज्य वृक्ष ❁

❁ वास्तवकुण्डसिद्धिः ❁

❁ वर्णपरत्वेन मण्डप-व्यवस्था ❁



परिशिष्ट-एक

भद्रमण्डलों की रचना

यज्ञ, याग, होम, व्रत, अनुष्ठान आदि धार्मिक कर्मकाण्डों में देवताओं के अनुसार विविध भद्रमण्डलों की रचना करना आवश्यक होता है। इनकी सङ्ख्या तान्त्रिक ग्रन्थों, पुराणों आदि में बहुत है। आनन्दरामायण में भी अनेक भद्रों के निर्माण की विधियाँ दी गयी हैं। इतना ही नहीं; मन्त्रसाधना में भी इनका निर्माण आवश्यक कहा गया है। जैसा कि कहा भी गया है—

साधकः साधयेन्मन्त्रं देवतायतनादिके।
शुद्धभूमौ गृहे प्रार्च्य मण्डले हरिमीश्वरम्।।

इन भद्रमण्डलों का निर्माण सदैव किसी समचतुरस्त्र भूमि या चौकी पर ही करना चाहिये। यथा—

चतुरस्त्रीकृते क्षेत्रे मण्डलादीनि वै लिखेत्।
रसबाणाक्षिकोष्ठेषु सर्वतोभद्रमालिखेत्।।

(अग्निपुराण २९.२)

भद्रमण्डलों का वर्गीकरण—भद्रों एवं मण्डलों को इन वर्गों में बाँट सकते हैं—

१. सामान्य भद्रमण्डल—सर्वतोभद्रमण्डल सामान्य भद्र है। इसका उपयोग सभी यागों एवं अनुष्ठानों में होता है।

२. शैवभद्र—इनका उपयोग शैवयाग तथा व्रतादि में करते हैं, जिनमें चतुर्लिङ्गतोभद्र, अष्टलिङ्गतोभद्र तथा द्वादशलिङ्गतोभद्र मुख्य हैं।

३. शाक्तभद्र—गौरीव्रत, देवीसम्बन्धी अनुष्ठानों एवं यागों में प्रमुखतः एकलिङ्गतोभद्र का उपयोग किया जाता है।

४. गणपतिमण्डल—श्रीगणेशोपासना एवं यागादि में इसका उपयोग होता है।

५. सूर्यभद्र—इसका उपयोग सूर्यसम्बन्धी अनुष्ठानों में होता है।

६. नवग्रहमण्डल—नवग्रहों का पीठ सामान्य है तथा उनके विशेष पीठ भी बनते हैं।

७. श्रीरामादि के भद्रमण्डल—श्रीरामयज्ञादि में बनते हैं।

सभी यज्ञों-अनुष्ठानों में उपयोगी

सर्वव्रतोद्यापनोपयोगिसर्वतोभद्रमण्डलम्

		ह	ला	ला	ला	ला	ला			ला	ला	ला	ला	ला	ह		
		पी	ह	ला	ला	ला					ला	ला	ला	ह	पी		
ह	पी		पी	ह	ला							ला	ह	पी		पी	ह
ला	ह	पी		पी	ह							ह	पी		पी	ह	ला
ला	ला	ह	पी		पी	ह					ह	पी		पी	ह	ला	ला
ला	ला	ला	ह	पी		पी	ह			ह	पी		पी	ह	ला	ला	ला
ला	ला			ह	पी	पी	पी	पी	पी	पी	पी	पी	ह			ला	ला
ला					ह	पी					पी	ह					ला
						पी					पी						
						पी					पी						
ला					ह	पी					पी	ह					ला
ला	ला			ह	पी	पी	पी	पी	पी	पी	पी	पी	ह			ला	ला
ला	ला	ला	ह	पी		पी	ह			ह	पी		पी	ह	ला	ला	ला
ला	ला	ह	पी		पी	ह					ह	पी		पी	ह	ला	ला
ला	ह	पी		पी	ह							ह	पी		पी	ह	ला
ह	पी		पी	ह	ला							ला	ह	पी		पी	ह
		पी	ह	ला	ला	ला					ला	ला	ला	ह	पी		
		ह	ला	ला	ला	ला	ला			ला	ला	ला	ला	ला	ह		

निर्माणविधि

प्रागुदीच्याङ्गतः रेखा कुर्यादिकोनविंशतिः।
खण्डेन्दुः त्रिपदः कोणे शृङ्खला पञ्चभिर्पदैः।।१।।

एकादशपदावल्ली भद्रन्तु नवभिः पदैः।
चतुर्विंशत्पदा वाऽपि विंशत्या परिधिः पदैः।।२।।

मध्ये षोडशभिः कोष्ठैः पद्ममष्टदलं स्मृतम्।
श्वेतेन्दुः शृङ्खला कृष्णा वल्लीर्नीलेन पूरयेत्।।३।।

भद्रं रक्तं सिता वाऽपि परिधिः पीतवर्णकः।
बाह्यान्तरदलाः श्वेताः कर्णिका पीतवर्णिका।।४।।

परिध्यावेष्टितं पद्मं बाह्ये सत्त्वं रजस्तमः।
तन्मध्ये स्थापयेद् देवान् ब्रह्मविष्णुसुरेश्वरान्।।५।।

(हेमाद्रौ च स्कन्दपुराणे)

शालिपिष्टादिशुक्लं स्याद्रक्तं कौसुम्भकादिकम्।
हरिद्रया च हारिद्रं कृष्णं स्याद्दग्धधान्यतः।।
शमीपत्रादिकं श्यामं..।

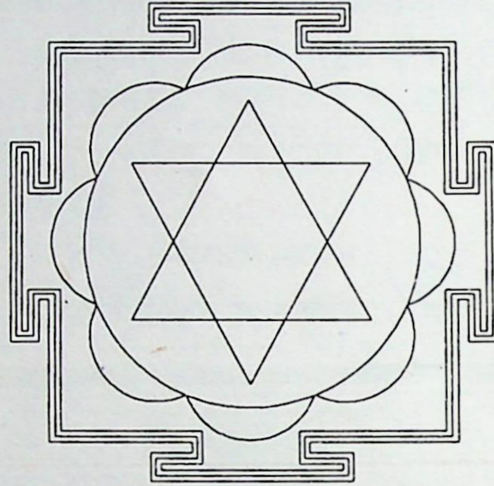
(अग्निपुराण ३०.१९-२०)

शैवयाग में उपयोगी

अथाष्टादशरेखात्मकं चतुर्लिङ्गतोभद्रम्

(शैवयाग हेतु)

शिवयन्त्रम्



निर्माणविधि

रेखा त्वष्टा दश प्रोक्ताश्चतुर्लिङ्गसमुद्भवे।
कोणैस्त्रिपदः श्वेतस्त्रिपदैः कृष्णशृङ्खला।।१।।

बल्ली सप्तपदा नीला भद्रं रक्तं चतुष्पदम्।
भद्रपार्श्वे महारुद्रं कृष्णमष्टादशैः पदैः।।२।।

शिवस्य पार्श्वतो वाऽपि कुर्यात्पीतं पदत्रयम्।
लिङ्गानां स्कन्धतः कोष्ठा विंशतिः रक्तवर्णकाः।।३।।

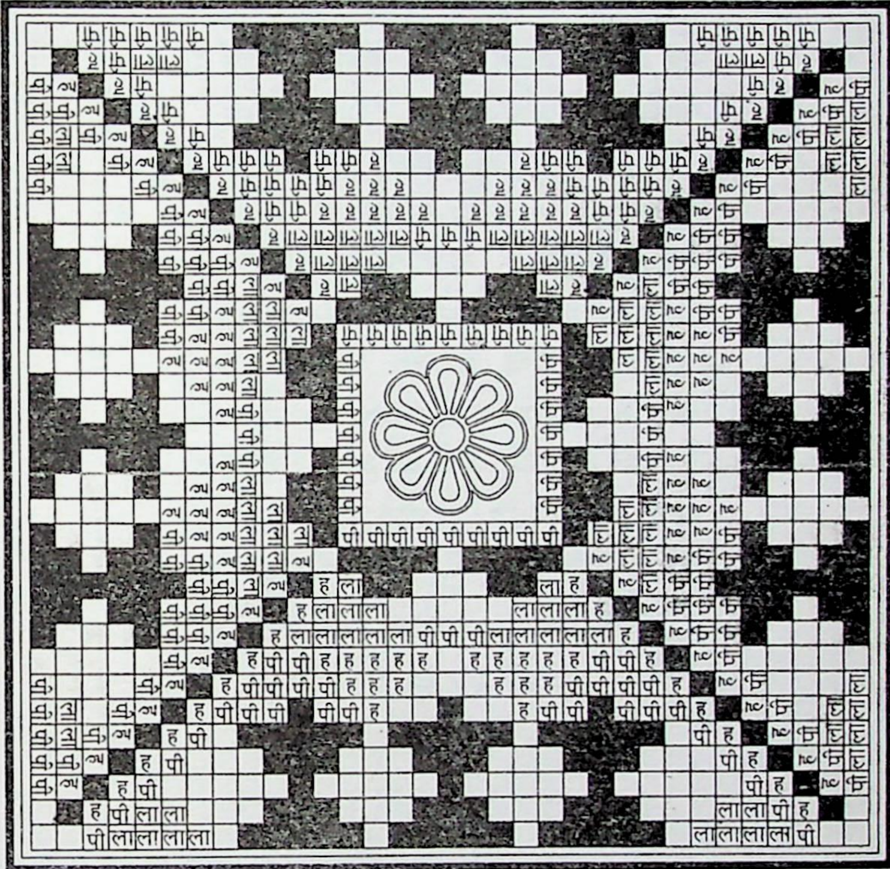
परिधिः पीतवर्णैस्तु पदैः षोडशभिः स्मृतः।
पदैस्तु नवभिः पश्चात् रक्तं पद्मं सकर्णिकम्।।४।।

(लिङ्गपुराणे)

शिवव्रतेषु तत्रैव लिङ्गतोभद्रमादिशेत्।
तन्मध्ये स्थापयेद्देवान् ब्रह्माद्याश्च सुरेश्वरान्।।

रुद्रयाग में उपयोगहेतु

रुद्रयामलोक्तं चतुस्त्रिंशद्रेखात्मकं द्वादशलिङ्गतोभद्रम्



रुद्र उवाच

उद्धारं कथयिष्यामि मदर्चार्थं तव प्रिये।
चतुस्त्रिंशत्समा रेखाः कुर्यात्पूर्वोत्तराः शुभाः।।१।।

मध्ये वृत्तं समालेख्य तन्मध्ये च दशात्मकम्।
बहिरष्टदलं पद्मं ततः षोडशपत्रकम्।।२।।

चतुर्विंशतिपत्राढ्यं द्वात्रिंशत्पत्रकं तथा।
चत्वारिंशत्पत्रकन्तु वृत्तं सूर्यसमप्रभम्।।३।।

खण्डेन्दुस्त्रिपदैः कोणे शृङ्खला दशकोष्ठिका।
एकविंशत्पदावल्ली भद्रन्तु षट्पदैस्तथा।।४।।

अष्टादशपदं लिङ्गं भद्रञ्चाष्टपदं तथा।
त्रयोदशपदा वाऽपि कुर्याल्लिङ्गस्य सन्निधौ।।५।।

पूज्योपर्यपि भद्राणि भवन्ति नवभिर्पदैः।
एवं द्वादशलिङ्गाढ्यं वाऽपि षोडशकान्वितम्।।६।।

षट्पदाष्टकभद्राढ्यं पूज्यं द्वादशात्मकम्।
मध्ये विंशतिभद्रन्तु कथितं पूर्वसूरिभिः।।७।।

वर्णक्रममधो वक्ष्ये मण्डलस्य च सिद्धये।
घृष्टतण्डुलपिष्टेन कृष्णवर्णेन निर्मितम्।।८।।

लिङ्गजातं सितेन्दुः स्याद्वल्ली बिल्वदलप्रभा।
शृङ्खला कृष्णवर्णा च पीतं भद्रद्वयं भवेत्।।९।।

सिता वाऽप्यस्तथा पूज्यो मध्यभद्रे त्वयं क्रमः।
पूज्योपर्यरुणे भद्रे सिते द्वे मध्यमं सितम्।।१०।।

सत्त्वं रजस्तमश्चैव बाह्यतः परिधित्रयम्।
एवं सुशोभितं कार्यं मण्डले शिवपूजने।।११।।

गणपतियागहेतु

गणपतिव्रतोद्यापनोपयोगिगणपतिभद्रमण्डलम्

निर्माणविधि

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मण्डलं सर्वसिद्धिदम्।
नाम्ना च विघ्नमर्दाख्यं विनायकव्रते हितम्।।१।।

तिर्यगूर्ध्वं सप्तदशरेखाः कार्या सुशोभनाः।
खण्डेन्दुस्त्रिपदः कोणे शृङ्खला च चतुष्पदैः।।२।।

कार्या नव पदावल्ली भद्रं रक्तं चतुष्पदम्।
ततो विंशतिकोष्ठेषु कार्यो गणपतिः शुभः।।३।।

कोष्ठद्वयेन मुकुटं गणेशस्य च कारयेत्।
पीतश्च परिधिः कार्यः पदैर्विंशतिभिस्ततः।।४।।

मध्ये षोडश कोष्ठेन पद्मं कार्यं सुशोभनम्।
सर्वतोभद्रदेवान्वै विशेषेणात्र योजयेत्।।५।।

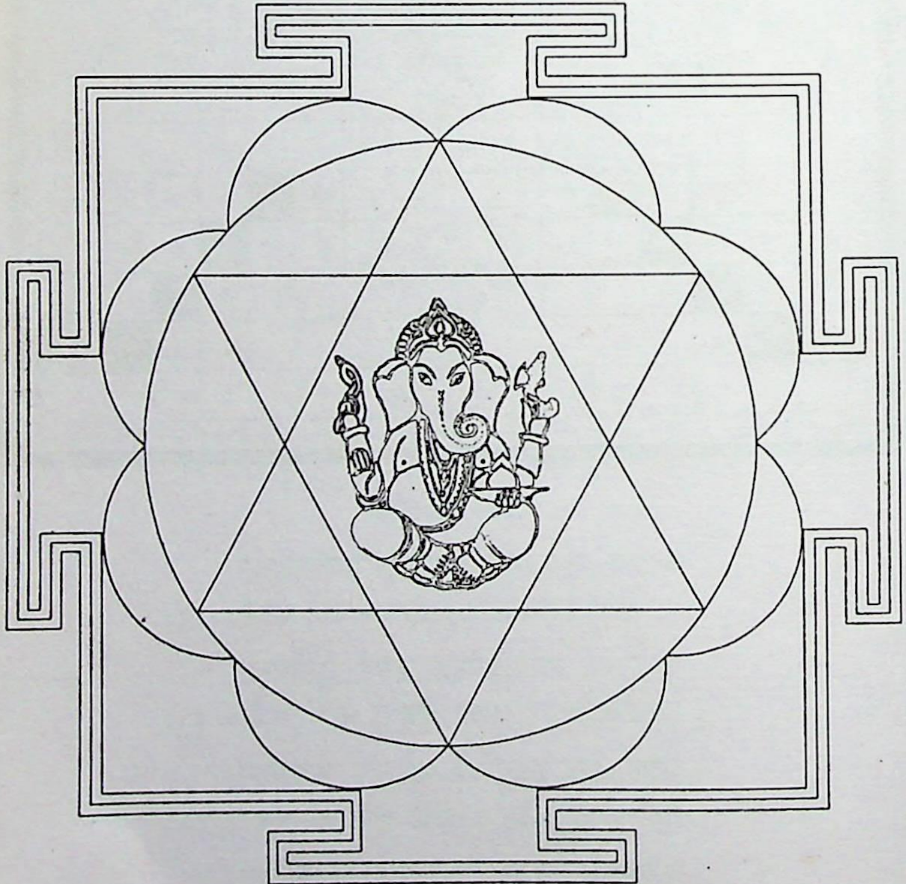
अथ वर्णपरत्वे धान्यानि

श्वेतत्वे तण्डुलाः प्रोक्ताश्चणकान्नन्तु पीतके।
रक्तवर्णे मसूराश्च गोधूमा वा स्मृता बुधैः।।

अथवा रक्तवर्णे तु कुङ्कुमाक्ताक्षताः स्मृतः।
हरिद्वर्णे च मुद्गान्नं माषान्नं कृष्णवर्णके।।

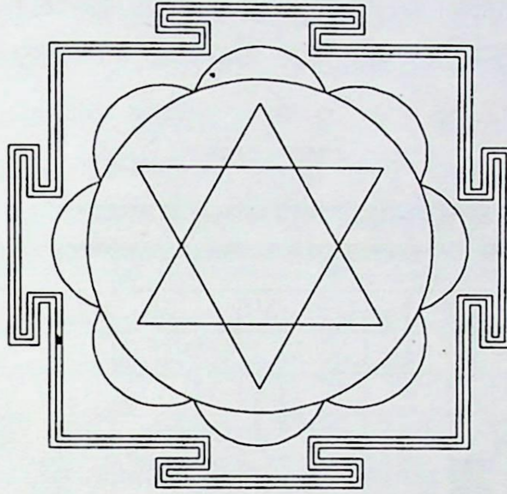
गणपतियाग एवं अनुष्ठानहेतु

गणपतियन्त्रम्



शैवयागहेतु

त्र्यम्बकयन्त्रम्



अथाष्टलिङ्गतोभद्रम्

चतुर्विंशतिरालेख्या रेखाः प्राग्दक्षिणायतः।
कोणेषु शृङ्खला पञ्च पदा वल्ल्यस्तु पार्श्वतः।।१।।

पदैर्नवभिरालेख्याश्चतुर्भिर्लघु शृङ्खला।
लघुवल्यः पदैः षड्भिस्ततोऽष्टादशभिः पदैः।।२।।

कृत्वा लिङ्गानि वाप्यः स्युस्त्रयोदशाभिरन्तरा।
ततो वीथीद्वयेनैव पीठं कुर्याद् विचक्षणः।।३।।

तस्य पादाः पञ्चपदाः द्वाराण्यपि तथैव च।
एकाशीति पदं मध्ये पद्मं स्वस्तिकमुच्यते।।४।।

कोणेषु शृङ्खला कार्या पदैस्त्रिभिरतः परम्।
पदैश्चतुर्भिर्दिक्षु स्युर्भद्राण्येषां समन्ततः।।५।।

एकादशपदा वल्यो मध्येऽष्टदलमालिखेत्।
पद्मं नवपदं ह्येव लिङ्गतोभद्रमुच्यते।।६।।

शृङ्खला कृष्णवर्णेन वल्लीर्नीलेन पूरयेत्।
रक्तेन शृङ्खला लघ्वीर्वल्ली पीतेन पूरयेत्।।७।।

लिङ्गानि कृष्णवर्णानि श्वेते नाप्यथ वापिकाः।
पीठं सपादं श्वेतेन पीतेन द्वारपूरणम्।।८।।

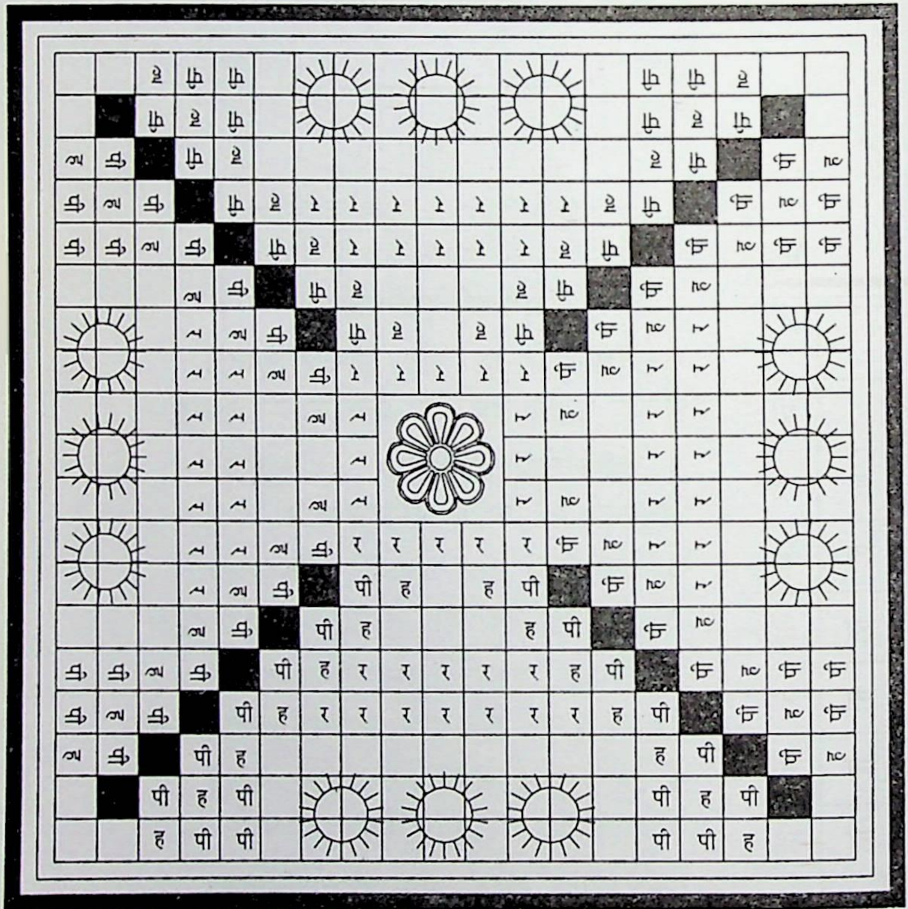
मध्ये स्युः शृङ्खला रक्ता वल्लीर्नीलेन पूरयेत्।
भद्राणि पीतवर्णानि पीता पङ्कजकर्णिकाः।।९।।

दलानि श्वेतवर्णानि यद्वा चित्राणि कल्पयेत्।
तिस्रो रेखा बहिः कार्या सिता रक्ता सिताक्रमात्।।१०।।

(अग्निपुराण)

ग्रहशान्तिहेतु

श्रीसूर्यव्रतोद्यापनोपयोगिसूर्यभद्रमण्डलम्



निर्माण-विधि

रेखा विंशतिसंयुक्तं भीमरथ्यास्तु मण्डलम्।
सूर्यपूजासु सर्वासु शस्यते मण्डलं त्विदम्।।१।।

खण्डेन्दुस्त्रिपदः कार्यः शृङ्खला षट्पदा स्मृता।
त्रयोदशपदैर्वल्ली भद्रन्तु त्रिपदं मतम्।।२।।

सूर्यत्रयं प्रकुर्वीत सप्तविंशतिभिः पदैः।
सूर्यत्रयं चतुष्कोणे पद्ममर्धसितं भवेत्।।३।।

पदैस्तु नवभिः कृत्वा भवेत्सूर्यत्रयं ततः।
सूर्योपरि भवेद्भद्रं पदद्वादशसम्मितम्।।४।।

ऊर्ध्वमिन्दुं प्रकुर्वीत चतुर्भिस्तु पदैः सितैः।
परिधिः षोडशपदा पद्मं नवपदं ततः।।५।।

सत्त्वं रजस्तम इति रेखाः स्युर्मण्डलाद् बहिः।
कृष्णा च शृङ्खला ज्ञेया वल्ली नीला प्रकीर्तिता।।६।।

भद्रान् पीतान् प्रकुर्वीत रवीन् रक्तान् प्रकारयेत्।
पीतश्च परिधिः प्रोक्तः पद्मं रक्तं तथैव च।।७।।

शक्तियाग में उपयोगी

एकलिङ्गतोभद्रं देवीमन्त्रानुष्ठानयोग्यं गौरीतिलकमण्डलम्

		ह	ला	ला	ला	ला	ला	ला	ह		
	पी	ह	ह	ला	ला	ला	ला	ह	ह	पी	
ह	ह	पी	ह	ह	ला	ला	ह	ह	पी	ह	ह
ला	ह	ह	पी	ह	पी	पी	ह	पी	ह	ह	ला
ला	ला	ह	ह	पी			पी	ह	ह	ला	ला
ला	ला	ला	पी	पी			पी	पी	ला	ला	ला
ला	ला	ला							ला	ला	ला
ला	ला	ह	ह					ह	ह	ला	ला
ला	ह	ह	पी	ह			ह	पी	ह	ह	ला
ह	ह	पी	ह	ह			ह	ह	पी	ह	ह
	पी	ह	ह					ह	ह	पी	
		ह							ह		

तिर्यगूर्ध्वगता रेखा कार्या स्निग्धास्त्रयोदश।
कोणेन्दुस्त्रिपदः कार्यः शृङ्खलास्त्रिपदाः स्मृताः।।१।।

वल्ली तु त्रिपदा नीला भद्रं रक्तं प्रकल्पयेत्।
पदैर्द्वादशभिः स्पष्टमुत्तरे पूर्वदक्षिणे।।२।।

पश्चिमायां महारुद्रं अष्टाविंशतिकोष्ठकैः।
लिङ्गपार्श्वे तथा मूर्ध्नि अष्टौ कोष्ठाः सुपीतकाः।।३।।

लिङ्गमेकं तथा गौर्यास्तिस्रः स्युरत्र मण्डले।
पूजयेन्मण्डलञ्चैतत् तस्य गौरी प्रसीदति।।४।।



परिशिष्ट-दो

यज्ञीय पदार्थ एवं वनस्पतियाँ

गोमय— गोमये वसते लक्ष्मी: पवित्रा सर्वमङ्गला।
यज्ञार्थे संस्कृता भूमिस्तदर्थमुपलेपनम्।।

शुद्ध गोमय—

स्वच्छन्तु गोमयं ग्राह्यं स्थाने च पतिते शुचौ।
उपर्यध: परित्यज्य आर्द्रं जन्तुविवर्जितम्।।

अग्राह्य गोमय—

रुग्णा वृद्धा प्रसूता च वन्ध्या सन्धिन्यमेध्यभुक्।
मृतवत्सा च नैतासां ग्राह्यं मूत्रं शकृत्पय:।।

पञ्चरत्न— सुवर्णं रजतं मुक्ता राजावर्तं प्रवालकम्।
रत्नपञ्चकमाख्यातं शेषं वस्तु ब्रवीम्यहम्।।

पञ्चपल्लव—

अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षचूतन्यग्रोधपल्लवा: ।
पञ्चभङ्गा: इति ख्याता: सर्वकर्मसु शोभना:।।

पञ्चगव्य— गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दधिसर्पिर्यथाक्रमम्।।

पञ्चामृत— पञ्चामृतं दधि क्षीरं सिता मधु घृतं स्मृतम्।।

मधुरत्रय— आज्यं क्षीरं मधु तथा मधुरत्रय उच्यते।

चतु:सम— कस्तूरिकाया द्वौ भागौ चत्वारश्चन्दनस्य च।
कुङ्कुमस्य त्रयश्चैक: कर्पूरश्च चतु:समम्।।

षड्रस— मधुरोऽम्लश्च लवण: कषायस्तिक्त एव च।
कटुकश्चेति राजेन्द्र रसषट्कमुदाहृतम्।।

सर्वगन्ध— कर्पूरश्चन्दनं दर्प: कुङ्कुमं च समांशकम्।
सर्वगन्धमिति प्रोक्तं समस्त सुरभूषणम्।।

(दर्प: कस्तूरिका)

यक्षकर्दम:— कस्तूरी ह्यगुरुश्चैव कर्पूरश्चन्दनं तथा।
कङ्कोलञ्च भवेदेभि: पञ्चभिर्यक्षकर्दम:।।

सर्वौषधिः— कुष्ठं मांसी हरिद्रे द्वे मुरा सैलेयचन्दनम्।
वचाचम्पकमुस्तञ्च सर्वौषध्यो दश स्मृताः।।

सौभाग्याष्टक—

इक्षवस्तृणराजञ्च निष्पाववाजिधान्यकम्।
विकारवच्च गोक्षीरं कुसुमं कुङ्कुमं तथा।
लवणं चाष्टमञ्चैव सौभाग्याष्टकमुच्यते।।

कौतुक द्रव्य—

दूर्वा यवाङ्कुराश्चैव वालकं चूतपल्लवाः।
हरिद्राद्वयं सिद्धार्थशिखिपत्रोरगत्वचः।।
कङ्कणौषधयश्चैताः कौतुकाख्या नव स्मृतः।

अष्टाङ्ग अर्घ्यद्रव्य—

आपः क्षीरं कुशाग्राणि दध्यक्षततिलांस्तथा।
यवाः सिद्धार्थकाश्चेति ह्यर्घ्योऽष्टाङ्गः प्रकीर्तितः।।

सप्तमृत्तिका— गजाश्वरथवल्मीकसङ्गमाद् ह्रदगोकुलात्।
मृदमानीय कुम्भेषु प्रक्षिपेच्चत्वरात्तथा।।

सप्तधातु— सुवर्णं रजतं ताम्रमारकूटं तथैव च।
लौहं त्रपुं तथा सीसं च धातवः सप्त कीर्तिताः।।

सप्तधान्य— यवगोधूमधान्यानि तिलाः कङ्गुमुस्तथैव च।
श्यामाकं चीनकं चैव सप्तधान्यमुदाहृतम्।।

दशविधि शाक—

मूलपत्रकरीराग्रफलकाण्डाधिरूढकाः ।
त्वक् पुष्पं कवकञ्चेति शाकं दशविधं स्मृतम्।।

करीरं = वंशाकुरः, अग्रं = पल्लवः, काण्डं = नालं, कवकं = छत्राकम्।

पवित्रम्— अनन्तगर्भितं साग्रं कौशं द्विदलमेव च।
प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रे यत्र कुत्रचित्।।

इध्मकाष्ठ— पलाशाश्वत्थखदिरवटोदुम्बराणाम् ।
तदभावे कण्टकवर्ण सर्ववनस्पतीनाम्।।

धूपद्रव्य— अगुरुश्चन्दनं मुस्ता सिह्लकं वृषणं तथा।
समभागैस्तु कर्तव्यो धूपोऽयममृताह्वयः।।

दशाङ्ग धूप—

षड्भागकुष्ठं द्विगुणो गुडश्च लाक्षात्रयं पञ्चनखस्य भागाः।
हरीतकी सर्जरसः समांसी भागैकमेकं त्रिलवं शिलाजम्।।
धनस्य चत्वारि पुरस्य चैको धूपो दशाङ्गः कथितो मुनीन्द्रैः।।

त्रिलवं = त्रिभागं, घनः = कर्पूरः, पुरो = गुग्गुलुः।

शक्तिगन्धाष्टक—

चन्दनागुरुकर्पूरचोरकुङ्कुमरोचना ।
जटामांसी कपियुताः शक्तेर्गन्धाष्टकं विदुः।।

वैष्णवगन्धाष्टक—

चन्दनागुरुह्रीबेरकङ्कुष्ठकुङ्कुमसेवकाः ।
जटामांसी मुरमिति विष्णोर्गन्धाष्टकं विदुः।।

शैवगन्धाष्टक—

चन्दनागुरुकर्पूरतमालजलकुङ्कुमम् ।
कुशीतं कुष्ठसंयुक्तं शैवं गन्धाष्टकं विदुः।।

होमद्रव्यप्रमाण—

मातुलुङ्गं चतुःखण्डं पनसं दशधा कृतम्।
अष्टधा नारिकेलानि खण्डितानि विदुर्बुधाः।।१।।
त्रिधा कृतं फलं बिल्वं कपिलं खण्डितं त्रिधा।
उर्वारुकफलं होमे चोदितं खण्डितं त्रिधा।।२।।
पललन्यानि खण्डानि समिधाः स्युर्दशाङ्गुला।
दूर्वात्रयं समुद्दिष्टं गुडूची चतुरङ्गुलाः।।३।।

नवग्रह समिधा—

अर्कः पलाशः खदिरः अपामार्गोऽथ पिप्पलः।
औदुम्बरश्च शमी दूर्वा कुशाश्च समिधाः क्रमात्।।



यज्ञीय पात्र-निर्माण में प्रयुक्त होने वाले वृक्ष

विकङ्कत वृक्ष (कण्टाई)

यज्ञीय पात्रों के निर्माण में प्रयुक्त होने वाले इस वृक्ष को हिन्दी में कण्टाई, रामबबूर, केकर, किङ्किणी, खञ्ज तथा विकङ्कत कहते हैं। इसके संस्कृत-नाम निम्नाङ्कित हैं—

विकङ्कतः स्रुवावृक्षो ग्रन्थिलः स्वादुकण्टकः।
स एव यज्ञवृक्षश्च कण्टकी व्याघ्रपादपि।।

(भावप्रकाश, आम्रादिफलवर्ग)

अर्थात् विकङ्कत, स्रुवा वृक्ष, ग्रन्थिल (गाँठदार होने के कारण), स्वादु कण्टक (काँटों में मिठास रहने से), यज्ञ वृक्ष, कण्टकी तथा व्याघ्रपाद आदि।

यह छोटे आकार का वृक्ष हिमालय के प्रान्तीय भागों, पञ्जाब, बिहार, मध्य-प्रदेश, दक्षिणी कोंकण आदि के जङ्गलों में होता है। गङ्गा जी के तटवर्ती मैदानी भागों में भी यह पाया जाता है। आधुनिक वनस्पति-वैज्ञानिकों के अनुसार यह तालीसादि कुल या 'फ्लाकोरिएसी' (Flaecoriaceae) की वनस्पति है। इसकी शाखाओं में काँटें होने से ही इसे विकङ्कत कहते हैं। वृक्ष की छाल खुरदरी तथा कृष्णाभ होती है। पत्र अण्डाकार होते हैं, जिनका ऊपरी भाग चिकना, किन्तु अधोभाग रोंएँदार होता है। पत्र कुछ नुकीले होते हैं। जब पत्ते छोटे होते हैं तब लाल रङ्ग के दिखते हैं, परन्तु कुछ समय पश्चात् हरे हो जाते हैं। इस वृक्ष में पीली आभायुक्त हरित वर्ण के पुष्प लगते हैं। होलिकोत्सव के समीप इसमें फूलों की प्रचुरता रहती है; फिर कुछ दिनों के उपरान्त आधे इञ्च तक लम्बे गोल बेर जैसे फल लगते हैं, जो बैंगनी या लाल रङ्ग के होते हैं। फलों में आठ से सोलह तक की सङ्ख्या में बीज होते हैं। फलों में गूदा होता है तथा पकने पर फल लाल हो जाते हैं। चमसों का निर्माण विकङ्कत-काष्ठ से ही होता है।

इसका उपयोग यज्ञीय पात्रों तथा स्रुवा बनाने के लिये होता है। इसके विभिन्न भाषाओं में नाम इस प्रकार हैं—

इसे वङ्गला भाषा में बडञ्चिगाछ, बैंची या बौंचफल कहते हैं। यह गुजराती में बेहफल, बिकलो तथा मराठी में गुलघोंटी एवं पिण्डरोहिणी कहलाता है। यह पञ्जाब में कुकोया नाम से जाना जाता है। उड़िया में इसे बड़ईकुचि कहते हैं। दक्षिण की तेलुगु भाषा में इसे कानवेगु चेट्टु एवं तमिल तथा मलयालम में वल्लवेलम् कहा जाता है। कन्नड भाषा में यह हलसानिका, हनुमाणिका तथा मालेगु कहा जाता है। आधुनिक वैज्ञानिकों ने इसका नाम लैटिन भाषा में 'फ्लाकोर्टिया रामोञ्ची (Flacourtia ramontchi) रखा है।

काश्मर्य (गम्भारी)

इसे हिन्दी में गम्भारी, खम्भारी, कुम्भेर या कुम्हेरी या कुम्भेरी भी कहा जाता है। इसके वृक्ष हिमालय के प्रान्तीय भाग, नीलगिरि पर्वत-शृङ्खला के क्षेत्र, पूर्वी घाट, पश्चिमी घाट, मध्यप्रदेश, बंगाल तथा बिहार के जङ्गलों में पाए जाते हैं। इसका उपयोग यज्ञीय पात्र बनाने में होता है। ऋतुग्रह नामक पात्र को काश्मर्य काष्ठ से ही बनाते हैं। चयन याग में एक स्रुक् भी कश्मरी काष्ठ से बनता है। इसके संस्कृत-पर्यायवाची निम्न हैं—

गम्भारी भद्रपर्णी च श्रीपर्णी मधुपर्णिका।
काश्मीरी काश्मरी हीरा काश्मर्य: पीतरोहणी।।

इसके वृक्ष ३० फुट से ६० फुट तक ऊँचे होते हैं। इसका काण्ड सीधा तथा गोलाई ३ से ६ फुट व्यास तक का होता है। काण्ड की छाल श्वेत वर्ण की कुछ मटमैली तथा काले धब्बों से युक्त होती है। इसके पत्ते पीपल के पत्तों-जैसे आकार वाले होते हैं। पीले रङ्ग के पुष्प तथा मौलसिरी-जैसे लम्बे-गोल फल लगते हैं। इसमें वसन्त ऋतु में पुष्प तथा ग्रीष्म ऋतु में फल लगते हैं और पकने के पश्चात् भूमि पर गिरने लगते हैं।

गम्भारी को बंगला भाषा में गाभार गाछ तथा गंवार कहते हैं। मराठी में शिवण, गुजराती में शीवल कहा जाता है। दक्षिणी भाषाओं में कन्नड में सीवनी, तेलुगु में गुमारटेक, तमिल में गुमड़ी, तथा मलयालम में गुमली कहते हैं। असमिया भाषा में इसे गोमरी, बोल्को तथा बक कहते हैं। राजस्थान में इसे शेवण, शिवण, कुम्भेरन कहा जाता है। आधुनिक वनस्पतिशास्त्रियों ने लैटिन भाषा में इसका नाम 'मेलिना अर्बोरिया' (Gmelina arborea) रखा है तथा इसका कुल बर्बिनेसेई (Verbenacea) है।

अरणी वृक्ष (अग्निमन्थ)

इसके मन्थन से अग्नि प्रकट हो जाती है; अत: इसका नाम देववाणी संस्कृत में अग्निमन्थ है। प्राचीन काल में वनों में इसकी सूखी लकड़ी का घर्षण कर लोग अग्नि उत्पन्न करते थे। यज्ञों में अरणि नामक उपकरण प्राय: इसी के काष्ठ से बनाया जाता है। इसीलिये इसे संस्कृत में अग्निमन्थ, बल्लिमन्थ, तेजोमन्थ, अनलमन्थ आदि कहा गया है। सिक्किम आदि प्रदेशों के दूरस्थ अञ्चलों में वनवासी जन आज भी इसी से अग्नि उत्पन्न करते देखे जाते हैं। इसकी बड़ी तथा छोटी दो जातियाँ होती हैं, जिनके और भी भेद हैं। लैटिन भाषा में इन भेदों के नाम 'प्रेम्ना इण्टीग्रीफोलिया' (Premna integrifolia), प्रेम्ना लाटिफोलिया (Premna latifolia), प्रेम्ना म्यूक्रोनाटा (Premna mucronata), क्लिरोडेण्ड्रोन् फ्लोमिडीज (Clerodendron phlomidi) तथा क्लेरोडेण्ड्रोन डेनाल्डी (Clerodendron denaldi) रखे गये हैं । संस्कृत में इन सबके निम्न पर्याय हैं—

अग्निमन्थो जयः सस्यात् श्रीपर्णी गणिकारिका।
जया जयन्ती तर्कारी नादेयी वैजयन्तिका।।

(भावप्रकाश)

इसे हिन्दी में अगेथू, अरनी, टेकार, उरिन, गनियार, गनियारी तथा वाकर कहते हैं। यह बंगला में गनिरया, गनियारि है। यह मारवाड़ी में अरणी, गुजराती में अरणी, मराठी में टाकला, थोर एरण, नरवेल तथा अरणी कहलाती है। यह पञ्जाबी में अगेथू, तमिल में इरुमैमुल्लै तथा इरुमेमुन्नै कहलाती है। तेलुगु में घेबुनेल्लि, नेपाली में गिनेरी, उड़िया में गन्थोना तथा अगुवथु कहलाती है। वैज्ञानिकों के अनुसार यह वृक्ष वर्बिनेसी कुल का सदस्य है।

वरुण (वारुण काष्ठ)

यज्ञकार्य के उपयोग में यह अति महत्त्वपूर्ण वृक्ष होने से इसका वैज्ञानिक नाम 'धार्मिक वृक्ष' शब्द जोड़कर रखा गया है। लैटिन में इसी कारण इसे क्रैटिवा रिलीजिओसा (Crataeva religiosa) कहा जाता है। इसके संस्कृत-पर्यायवाची भावप्रकाश-निघण्टु के अनुसार निम्न हैं—

वरुणो वरणः सेतुः तिक्तशाकः कुमारकः।

यह वृक्ष उत्तरी भारत, मध्यप्रदेश, बंगाल, असम, कर्णाटक, केरल तथा अन्यत्र भी बाग-बगीचों में लगा हुआ मिलता है। इसकी त्वचा धूसर वर्ण की होती है। टहनियों पर श्वेत रंग के धब्बे होते हैं। इसमें बेलपत्र की भाँति तीन-तीन पत्ते लगते हैं, अतः इसे त्रिपर्णक कहा जाता है तथा नीबू या बेल-जैसे इसमें फल लगते हैं। बंगाल में इसे बरुनगाछ, मराठी में बायवरणा, गुजराती में वरुणो एवं तेलुगु में जाजिचेट्टु कहा जाता है, जिसका अर्थ यज्ञवृक्ष होता है। तमिल में यही मरलिंगम तथा मलयालम में नीरमथलम कहा जाता है। कन्नड़ में इसे नरुवेली कहते हैं।



परिशिष्ट-तीन

वास्तवकुण्डसिद्धिः

कुण्डावबोधनविधौ परनिर्मितानि स्थूलप्रकारजनितान्यशुभानि बुध्वा।
तेन ज्यकागणितवासनया प्रसङ्गाद्दिक्कुण्डसाधनविधिं प्रवदामि सूक्ष्मम्।।१।।

चतुर्भुजं वृत्तमथार्द्धचन्द्रं त्रिकोणकं योनिसमाह्वयञ्च।
षडस्रमष्टास्रमथाष्टपत्रपद्माह्वयं चापि तु पञ्चकोणम्।।२।।

सप्तास्रकं चेति दशैव कुण्डान्युक्तानि तज्ज्ञैरिह सत्फलार्थम्।
हस्तद्विहस्तादिफलोन्मितानि तत्राङ्गुलैः सिद्धमितैश्च हस्तः।।३।।

षष्टिव्यङ्गुलकैरत्राङ्गुलं व्यङ्गुलकं तथा।
प्रतिव्यङ्गुलषष्ठ्या स्याद्गणितार्थं क्रमस्त्वयम्।।४।।

तत्रैके हस्तजं क्षेत्रफलं जिनकृतेः समम्।
द्वित्र्यादिगुणितं तद्धि द्व्यादिहस्तोद्भवं सदा।।५।।

फलमेकभवं द्व्यादिगुणितं द्व्यादिहस्तजम्।
न हि द्व्यादिकराणां चाङ्गुलवर्गसमं हि तत्।।६।।

आयुरारोग्यमैश्वर्यं लभते समबाहुके।
सूक्ष्मक्षेत्रफले कुण्डे तद् ह्रासो विषमे भुजे।।७।।

अज्ञैस्त्र्यस्त्रादिकुण्डेषु यैर्भुजा विषमा कृताः।
चतुर्भुजेऽपि विषमा भुजाः किं न कृताश्च तैः।।८।।

एकद्विघ्नफलाभ्यां ये पदे ते बाहुविश्रुती।
स्यातां समश्रुतौ चाद्ये कुण्डे तुल्यचतुर्भुजे।।९।।

आसन्नमूलग्रहणाद्भुजो व्यासश्चतुर्भुजे।
एकहस्ते द्व्यादिहस्तेऽप्येवं साध्यं विचक्षणैः।।१०।।

अष्टघ्नात्फलवर्गाच्च पञ्चभक्तात्पदात्पदम्।
अभीष्टे वर्त्तुले कुण्डे व्यासमानं प्रजायते।।११।।

आसन्नमूलग्रहणाद्व्यासः सप्ताश्विसम्मितः।
एकहस्ते तथा द्व्यादिहस्ते स्वस्वफलक्रमात्।।१२।।

द्वात्रिंशद्गुणितात्पञ्चभक्ताच्च फलवर्गतः ।
मूलमूलं दलेन्द्वाभे व्यासमानं प्रजायते ।।१३।।

आसन्नमूलग्रहणादङ्गुलान्यष्टवह्नयः ।
व्यङ्गुलानि दशव्यासश्चैकहस्तेऽर्धचन्द्रके ।।१४।।

समत्रिभुजकुण्डस्य फलवर्गो नृपाहतः ।
त्रिभक्तस्तत्पदान्मूलं भुजः स्यादथ तत्कृतिः ।।१५।।

स्वत्र्यंशसंयुता कार्या व्यासः स्यात्तत्पदं त्विह ।
नृपघ्नाद्वा फलाद्वर्गो भैर्हतस्तत्पदात्पदम् ।।१६।।

व्यासमानं भवेत्तत्र चैकहस्ते भुजो भवेत् ।
कुण्डेऽङ्गुलादिको व्यासश्चासन्नपदतः किल ।।१७।।

फलात्खखाष्टवेदघ्नात्त्र्यद्रिखादिहृतात्पदम् ।
बाहुरश्वत्थपत्राभे योनिकुण्डे प्रजायते ।।१८।।

समत्रिभुजवत्तस्माद्व्यासोऽप्यत्राथ हस्तजे ।
कुण्डे भुजो भवेद्व्यासोऽङ्गुलाद्यो गणितेन वै ।।१९।।

इत्येको योनिकुण्डप्रकारः

अथवाश्वत्थपत्राभे योनिकुण्डे फलन्तु यत् ।
षष्टिवर्गगुणादस्मात् त्रिद्विदन्तैर्हृतात्पदम् ।।२०।।

व्यासमानं भवेन्नूनं तद्वर्गार्धपदं भुजः ।
हस्तयोनौ व्यासमानमिदं बाहुरयं सदा ।।२१।।

इति द्वितीयो योनिकुण्डप्रकारः

एवं द्वितीयकुण्डस्य फलवर्गोऽब्धिसङ्गुणः ।
भैर्हतस्तत्पदान्मूलं भुजमानं प्रजायते ।।२२।।

अष्टघ्नाच्च फलाद्वर्गो भैर्हतस्तपदात्पदम् ।
व्यासो भवेद्द्विनिघ्नोऽसौ भुजो व्यासोऽथवा निशम् ।।२३।।

आसन्नमूलग्रहणाद्धस्तकुण्डे भुजस्त्वयम् ।
व्यासोऽङ्गुलात्मकश्चायं सम्यक् शिल्पविदोदितः ।।२४।।

एवमष्टास्रकुण्डस्य फलं पञ्चाद्रिसङ्गुणम् ।
त्रिपञ्चविहृतं तस्य मूलं व्यासो भवेद्ध्रुवम् ।।२५।।

शून्यं द्वाविंशतिस्त्र्यूनषष्ठिः सावयवो गुणः ।
तद्गुणो व्यास एवात्र भुज स्यादष्टकोणके ।।२६।।

एकहस्ताष्टकोणस्य व्यास आसन्नमूलतः।
भुजश्चायं तथा द्व्यादिहस्तकुण्डे समानयेत्।।२७।।

अथ पद्माख्यकुण्डे तु स्वफलङ्गुणितञ्च तत्।
शून्याङ्गवह्निभिर्वह्निवेदसागरभाजितम् ।।२८।।

तन्मूलं व्यासमानं स्यात्ततश्चाष्टास्रवद्भुजः।
एकहस्ते च पद्माख्ये व्यासो बाहुस्तथाङ्गुलैः।।२९।।

अथाऽन्यथाष्टपत्रैस्तु पद्मकुण्डं वदाम्यहम्।
शून्यं षट् सप्त मनवो गुणः सावयवस्त्वयम्।।३०।।

फलात्तद्गुणितान्मूलं भुजमानं प्रजायते।
सोऽष्टास्रव्यासगुणकोद्धतो व्यासो भवेद्ध्रुवम्।।३१।।

तथैकहस्तपद्माख्ये भुजः सावयवस्त्वयम्।
व्यासश्चायं द्व्यादिहस्तेऽप्येवं साध्यं विचक्षणैः।।३२।।

फलं पञ्चास्रकुण्डोत्थं खनागेन्दुगुणं हृतम्।
नगाभ्रभूमिभिर्लब्धात्पदं व्यासो भवेदिह।।३३।।

शून्यं पञ्चाग्नयो भूपा गुणः सावयवस्त्वयम्।
तद्गुणो व्यास एवात्र भुजः स्याद्गणितेन वै।।३४।।

अथैकहस्तपञ्चास्रे आसन्नपदतस्त्विह।
व्यासो भुजो भवेन्नूनमथ सप्तास्रकुण्डके।।३५।।

फलाच्छून्याम्बरार्कघ्नाद्द्विनागहृतात्पदम् ।
व्यासो भवेद्धि सप्तास्रे भुजोऽप्येवं ततः सखे।।३६।।

शून्यं षड्विंशतिर्भूमिः षड्बाणा गुणकोऽस्त्ययम्।
तद्घ्नव्यासौ भुजश्चाथ दोर्व्यासौ चैकहस्तजौ।।३७।।

इति कुण्डगणितप्रकारः

वृत्तकुण्डं निजव्यासदलभ्रमणतो भवेत्।
अर्धचन्द्रं निजव्यासदलवृत्तस्य खण्डकम्।।३८।।

त्रिचतुःपञ्चषट्सप्ताष्टास्रकुण्डेषु विस्तृतेः।
अर्धेनादौ लिखेद्वृत्तं कार्याः स्वस्वविभागकाः।।३९।।

समाँश्चैकैकका रेखाः प्रतिभागं वृत्तौ ततः।
पूर्णा ज्यावच्च तेन स्यात्स्वस्वकुण्डास्रकाकृतिः।।४०।।

सँलग्ना वा भुजावृत्ते देयास्तद्वशतस्त्विह।
स्वस्वास्राकृतिजं कुण्डं यजमानाङ्गुलैर्भवेत्।।४१।।

ज्ञाते भुजे वृत्तावत्र विभागा अप्रयोजकाः।
विभागज्ञानतश्चैवं भुजास्ते चाप्रयोजकाः।।४२।।

समत्रिभुजवत्पूर्वं कृत्वा तुल्यत्रिबाहुकम्।
योनिकुण्डे ततो बाहुत्रयमध्याद्भुजाद्बहिः।।४३।।

मण्डलार्धत्रयं लेख्यं बाह्वर्धभ्रमणादिह।
एकार्धवृत्तमध्याच्च पार्श्वयोस्तद्भुजाग्रगे।।४४।।

कार्ये रेखेऽथ तत्सक्ते चापे त्यक्त्वाऽवशेषकम्।
योनिकुण्डं भवेदाद्यमश्वत्थदलयोनिभम्।।४५।।

एवं व्यासार्धमानेन वृत्तं कृत्वा चतुर्भुजम्।
भुजतुल्यभुजैस्तत्र स्वष्टकोणाच्च पार्श्वयोः।।४६।।

भुजार्धकेन्द्रतो वृत्तदले बाह्वर्धमानतः।
कार्ये भुजाद्बहिश्चान्यद्योनिकुण्डं च तद्भवेत्।।४७।।

पूर्वं व्यासभुजाभ्यां च यथोक्त्याष्टास्रकं लिखेत्।
ततस्तद्बाहुखण्डेन बाह्वर्धात्केन्द्रतः किल।।४८।।

वृत्तार्धं बाहुतश्चोर्ध्वं विलिखेदासमन्ततः।
तद्धि तुल्यचतुर्भागं कृत्वा चाद्यतृतीयकौ।।४९।।

विभागान्तौ च यौ ताभ्यां तद्बाहुदलमानतः।
भ्रमणान्मत्स्यमुत्पाद्य तन्मुखं वृत्ततो बहिः।।५०।।

यदस्ति तद्गते ताभ्यां विभागाभ्यां च रेखिके।
तद्बाहुखण्डतुल्ये **च समन्**तात्तेन तद्भवेत्।।५१।।

अष्टपत्रात्मकं कुण्डं **पद्माख्यं** पद्मवच्छुभम्।
व्यक्ताव्यक्तोपपत्त्यैव सिद्धं सूक्ष्मं मयोदितम्।।५२।।

द्वितीये पद्मकुण्डेऽपि साध्यमष्टास्रकं पुरा।
तद्भुजाद्यन्तचिह्नाभ्यां व्यासार्धाद्भुजमानतः।।५३।।

वृत्तत्रिभागभ्रमणान्मत्स्यं कृत्वाऽथ यद्भुजात्।
बहिःस्थितं च यन्मत्स्यखण्डं पत्रं तदेव हि।।५४।।

एवं प्रतिभुजं पत्रादष्टपत्रोद्भवं किल।
पद्मकुण्डं भवेद्व्यक्ताव्यक्तवासनया परम्।।५५।।

द्व्यादिहस्तेषु कुण्डेषु स्वस्वोक्तभुजविस्तृती।
कार्ये ताभ्यां यथोक्त्यैव यजमानाङ्गुलैः किल।।५६।।

स्वस्वास्राकृतिजान्यत्र कुण्डानि प्रभवन्ति च।
द्व्यादिहस्ताख्यकुण्डेषु फलमूलजिनांशकः।।५७।।

प्रकल्प्य वाऽङ्गुलं तत्र तैर्यथोक्तप्रकारतः।
एकहस्तोक्तविस्तारभुजाभ्यामेव साधयेत्।।५८।।

वासनानवबोधेन बहुधा शुष्कपण्डितैः।
कृतं सुस्थूलकुण्डानां साधनं तन्न मे मतम्।।५९।।

संवादमित्युक्तफलेन सम्यक् तदेव कुण्डं किल सप्रमाणम्।
नान्यन्मुनीन्द्रोक्तमपीह यस्मात्प्रत्यक्षसिद्धौ न हि वाक्प्रमाणम्।।६०।।

अन्तर्बहिःकोणभवं तु कुण्डं द्विघ्नं स्वसङ्ख्याकभुजैरलीकम्।
यैरुक्तमष्टास्रमहो कथं तैस्त्र्यब्ध्यस्रकं चापि तथादृतं न।।६१।।

इमानि कुण्डानि मयोदितानि स्वार्षागमप्रोक्तदिशि स्थितानि।
शुद्धावनौ चाम्बुसमीकृतायां कार्याणि तज्ज्ञैरिह सत्फलार्थम्।।६२।।

यथोदितक्षेत्रफलस्य साम्यप्रदर्शनार्थं तु ममैष यत्नः।
कुण्डस्य होमार्थमिहाथ तत्रत्योऽन्यो विशेषः सुधियाऽन्यतन्त्रात्।।६३।।

इति कुण्डसाधनप्रकारः



परिशिष्ट-चार

वर्णपरत्वेन मण्डप-व्यवस्था

मण्डप-निर्माण के क्रम में चारो वर्णों के लिये किये जाने वाले यज्ञ-यागादि कर्मों हेतु मण्डपों के अलग-अलग आकारों का विधान शास्त्रों में किया गया है। एतदर्थ ब्राह्मणों के लिये बीस हाथ के मण्डपों को प्रशस्त कहा गया है। इसी प्रकार राजाओं के लिये सोलह हाथ का, वैश्यों के लिये बारह हाथ का, शूद्रों के लिये दश हाथ का एवं अन्त्य वर्णों के लिये आठ हाथ के मण्डप का विधान बताया गया है। जैसा कि विश्वकर्मा का वचन भी है—

विप्राणां मण्डपः कार्यो हस्तैर्विंशतिसम्मितैः।
राज्ञां षोडशभिर्हस्तैर्हस्तैर्द्वादशभिर्विशाम्।
शूद्राणां दशभिर्हस्तैरष्टाभिर्हीनवर्णिनाम्।।

वर्णपरत्वेन कुण्डव्यवस्था

द्विजों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) के लिये चतुष्कोण, वृत्त एवं वृत्तार्द्ध (अर्धचन्द्राकार) कुण्ड प्रशस्त माने गये हैं। उसमें भी विशेषकर ब्राह्मणों के लिये चतुरस्र कुण्ड, क्षत्रियों (राजाओं) के लिये वृत्तकुण्ड एवं वैश्यों के लिये अर्धचन्द्राकार कुण्ड का निर्धारण किया गया है। शूद्रों के लिये केवल त्रिकोण कुण्ड ही निर्दिष्ट किये गये हैं। फिर भी कतिपय तन्त्रवेत्ताओं के अनुसार सभी वर्णों के लिये चतुरस्र या वृत्तकुण्ड ही सर्वश्रेष्ठ होता है; जैसा कि शारदातिलक में कहा भी गया है—

विप्राणां चतुरस्रं स्याद्राज्ञां वर्त्तुलमिष्यते।
वैश्यानामर्धचन्द्राभं शूद्राणां त्र्यस्रमीरितम्।।

इस सन्दर्भ में पञ्चरात्र का भी निम्न वचन द्रष्टव्य है—

सर्वाणि तानि वृत्तानि चतुरस्राणि वा सदा।।

उपर्युक्त वर्णपरक कुण्डव्यवस्था के होते हुये भी यदि यजमान के रूप में स्त्री हो तो उसके लिये एकमात्र योनिकुण्ड बनाने का ही विधान किया गया है। जैसा कि कहा भी गया है— 'स्त्रीणां कुण्डानि विप्रेन्द्र योन्याकाराणि कारयेत्।'

विविध कुण्डों के फल

चतुरस्र कुण्ड को सभी प्रकार की सिद्धियों को देने वाला बताया गया है; इसीलिये इसे सर्वश्रेष्ठ माना गया है। इसके अतिरिक्त योनिकुण्ड यजमानों को पुत्र प्रदान करने

वाला होता है। अर्धचन्द्राकार वाले कुण्ड भी शुभफलदायक कहे गये हैं। शत्रुओं के विनाश हेतु त्र्यस्र कुण्ड का विधान विहित है एवं शान्तिकर्मों हेतु वृत्तकुण्ड को प्रशस्त कहा गया है। इसी प्रकार छेदन एवं मारण कर्म हेतु षडस्र कुण्ड तथा वर्षा एवं रोगों की शान्ति हेतु अष्टास्र कुण्ड की स्थापना का विधान किया गया है; जैसा कि शारदातिलक में कहा भी गया है—

सर्वसिद्धिकरं कुण्डं चतुरस्रमुदाहृतम्।
पुत्रप्रदं योनिकुण्डमर्द्धेन्द्वाभं शुभप्रदम्।।
शत्रुक्षयकरं त्र्यस्रं वर्तुलं शान्तिकर्मणि।
च्छेदनमारणयोः षष्ठं षडस्रं पद्मसन्निभम्।
वृष्टिदं रोगशमनं कुण्डमष्टास्रमीरितम्।।




ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान
पुस्तकालय
विभाग
शान्ति कुंज, हरिद्वार

कर्मकाण्ड-ग्रन्थाः
(हिन्दी-टीकासहिताः)

पं० वेणीरामगौडकृतटीका—

- यज्ञमीमांसा
- यज्ञहवनमन्त्रसंग्रह
- रुद्रयागहवनविधि
- श्रौतयज्ञपरिचय
- यज्ञप्रसाद
- यज्ञप्रवचन
- यज्ञपरिचय
- यज्ञमाहात्म्य

पं० अशोककुमारगौडकृतटीका—

- अन्नपूर्णारहस्यम्
- श्रीकृष्णरहस्यम्
- गणपतिरहस्यम्
- गायत्रीरहस्यम्
- गङ्गारहस्यम्
- नृसिंहरहस्यम्
- पूजारहस्यम्
- रामरहस्यम्
- राधारहस्यम्
- रुद्रयागरहस्यम्
- लक्ष्मीरहस्यम्
- विष्णुयागरहस्यम्
- विष्णुरहस्यम्
- खाँटूबाबा : श्यामरहस्यम्
- शिवरहस्यम्
- सरस्वतीरहस्यम्
- सूर्यरहस्यम्
- सूर्ययागरहस्यम्
- हनुमद्रहस्यम्
- हनुमद्यागरहस्यम्
- पञ्चदेव-प्रतिष्ठारहस्यम्
- वेदीपूजारहस्यम्

महर्षि अभयकात्यायनकृतटीका—

- कुण्डमण्डपसिद्धिः
- कुण्डार्कः
- कुण्डरत्नावली

अन्यकृतग्रन्थ—

- सन्ध्योपासनपद्धति : शिवराज आचार्य
- निर्णयसिन्धु : व्रजरत्नभट्टाचार्य
- धर्मसिन्धु : रविदत्तशास्त्री
- हिन्दू संस्कार : राजबली पाण्डेय
- गृहप्रवेशपद्धति : विन्ध्येश्वरीप्रसादद्विवेदी
- पौराणकर्मदर्पण (मूलमात्रम्)
- कृत्यसारसमुच्चय : जगदीशचन्द्रमिश्र
- वर्षकृत्य (१-२ भाग) : रामचन्द्रझा
- रुद्राध्याय : नमक-चमक (मूलमात्रम्)
- आह्निकसूत्रावलि (मूलमात्रम्)
- ऋग्वेदीय ब्रह्मकर्मसमुच्चय (मूलमात्रम्)
- कर्मकाण्डप्रदीप (मूलमात्रम्)
- नित्यनैमित्तिककर्मसमुच्चयः (मूलमात्रम्)
- बृहत्स्तोत्ररत्नाकर : रामतेज पाण्डेय
- बृहत्स्तोत्ररत्नाकर : नारयण राम आचार्य
- श्रीमद्भागवत कथा (साप्ताहिक) १-२ भाग : शिवप्रसाद द्विवेदी
- ब्रह्मयज्ञपद्धति (तर्पणपद्धतियुता) शिवराज आचार्य
- शुक्लयजुर्विधानसूत्रम् ('यजुर्मञ्जरी' संस्कृत व्याख्या सहित)
- शुक्लयजुर्वेदसंहिता (मूलमात्रम्)
- शुक्लयजुर्वेदीयरुद्राष्टाध्यायी (भाषा टीका) ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
- दुर्गासप्तशती (मूलमात्रम्)

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी